RNI No. 7127/60

डाक पंजीयन संख्या - Jaipur City / 411 2023-25

संघशक्ति

मासिक समाचार पत्रिका

वर्ष : 62 अंक : 01 प्रकाशन तिथि : 25 दिसम्बर कुल पृष्ठ : 36 प्रेषण तिथि : 4 जनवरी 2025

शुल्क एक प्रति : 15/- वार्षिक : 150/- रुपये पंचवर्षीय 700/- रुपये दस वर्षीय 1300/- रुपये

101 वीं जन्म जयंती

श्रद्धेय पूज्य श्री तनसिंह जी

(25 जनवरी 1924 - 7 दिसम्बर 1979)

''मानवता का मार्गदर्शक एक युगद्रष्टा''

मैं निर्झर हूँ पर्वत से बह गहरा नीचे तक आया हूँ।
पगली धरती के आंचल को मैं तीर्थ बनाने आया हूँ।

शारीरिक शिक्षक संघ जिला बाड़मेर में नवचयनित पदाधिकारीयों को हार्दिक बधाई एवं शुभकामनाएं

दलपतसिंहजी महेचा
जिला संरक्षक
उप जि.शि.अ.
शा.शि.(माध्य.)बाड़मेर
मो. 9784776978

देवीसिंहजी भाटी
गोरड़िया
जिला महामंत्री
मो. 9828997677

रिड़मलसिंहजी राठौड़
बिशाला
जिला उपाध्यक्ष
मो. 9784329968

तनसिंहजी महेचा
बाड़मेर आगौर
जिला उपाध्यक्ष
मो. 9079398033

भूरसिंहजी राठौड़
उगेरी
जिला संगठन मंत्री
मो. 9828596856

भीखसिंहजी सोढ़ा
गिराब
जिला प्रचार मंत्री
मो. 9772866592

गोपालसिंहजी सोलंकी
मगरा
ब्लॉक अध्यक्ष बाड़मेर
मो. 94134915

भंवरसिंहजी राठौड़
स्वामी का गांव
ब्लॉक अध्यक्ष शिव
मो. 9214233354

उदयसिंह राठौड़
लाबराऊ
ब्लॉक अध्यक्ष रामसर
मो. 9928695303

धनसिंहजी धांधू
गंगासरा
ब्लॉक अध्यक्ष सेड़वा
मो.9460384253

:: शुभेच्छु ::

पन्नेसिंह सेहला	वालमसिंह आकोड़ा (पूर्व जिलाध्यक्ष)	पबसिंह चेतरोड़ी	दुर्जनसिंह खारिया	मेहताबसिंह आरंग	तुलछसिंह सुवाला
जोधसिंह लूणु	पर्बतसिंह ताणू रावजी	बाबूसिंह रामसर	लालसिंह आकोड़ा	अनुपसिंह लाम्बड़ा	प्रवेन्द्रसिंह भुरटिया
छुगसिंह खारा	कृष्णसिंह हनुमानगढ़	नरपतसिंह गिराब	नाथुसिंह थुम्बली	गुमानसिंह जालेला	सुरेन्द्रसिंह बावड़ी
कुन्दनसिंह बावड़ी	छैलसिंह हरसाणी	गोपालसिंह बलाई	प्रवीणसिंह देदुसर	नटवरसिंह झिंझनियाली	जोगेन्द्रसिंह रेडाणा
गणपतसिंह गंगासरा	शिशपालसिंह गंगासरा	हेमसिंह सेहला	वन्नेसिंह सेहला	बालसिंह इन्द्रोई	रावलसिंह हरसाणी
मनोहरसिंह गोरड़िया	भानुप्रतापसिंह कारटिया				

एवं समस्त स्वजातिय शारीरिक शिक्षक बंधु

संघशक्ति

4 फरवरी, 2025

वर्ष : 62 अंक : 02

-: सम्पादक :-

राजेन्द्र सिंह राठौड़

शुल्क – एक प्रति : 15/- रुपये, वार्षिक : 150/- रुपये, पंचवर्षीय : 700/- रुपये, दस वर्षीय : 1300/- रुपये

विषय – सूची

समाचार संक्षेप		04
चलता रहे मेरा संघ	श्री भगवानसिंह जी रोलसाहबसर	05
पूज्य श्री तनसिंह जी (के सम्बन्ध में)	श्री चैन सिंह बैठवास	06
कविवर रवीन्द्रनाथ टैगोर का अर्पण.......	अजीत सिंह धोलेरा	08
भरे हालात हैं ये विष के प्याले....	रेंवत सिंह पाटोदा	11
शाखा शिक्षक-संघ के पायनियर	महेन्द्र सिंह गूजरावास	13
वैभव रो वैराग्य की ओर	राजेन्द्र सिंह बोबासर	14
राजपूत	युधिष्ठिर	16
सेवा	गजेन्द्र सिंह आऊ	19
जीवन में श्री क्षक्षत्रिय युवक संघ का मार्ग....	जितेन्द्र सिंह देवली	20
मैं शरीर नहीं हूँ	रश्मि रामदेरिया	22
धर्म पथ	लोकेन्द्र सिंह	24
बुन्देलखण्ड के लोक देवता: लाल हरदौल जू	नरेन्द्र सिंह परिहार	25
परमार वंश के राष्ट्रीय महापुरुष भर्तृहरि एवं....	स्वामी गोपाल आनन्द बाबा	27
आओ! कुछ चिन्तन करें	भंवर सिंह मांडासी	31
हर स्थिति में खुशी	अजीत सिंह कुणघेर	33
अपनी बात		34

समाचार संक्षेप

देश भर में हर्षोल्लास से मनाया गया संघ स्थापना दिवस :- 22 दिसम्बर को संघ स्थापना के 78 वर्ष पूर्ण हुए। इस अवसर पर देश भर में 200 स्थानों पर संघ स्थापना दिवस मनाया गया। राजस्थान, गुजरात, दिल्ली, हरियाणा, महाराष्ट्र तथा विजयवाड़ा (आन्ध्रप्रदेश) में कार्यक्रम आयोजित किये गये।

बाड़मेर स्थित आलोक आश्रम में स्थापना दिवस कार्यक्रम को संबोधित करते हुए संरक्षक श्री ने कहा कि संघ की स्थापना पूज्य तनसिंह जी के संकल्प से हुई है। उनकी तपस्या तथा आपकी मेहनत एवं लगन से निरन्तर बढ़ता रहेगा। उदयपुर में आयोजित कार्यक्रम में संघ प्रमुख श्री लक्ष्मणसिंह जी बैण्याकाबास ने संघ को चारों पुरुषार्थों की प्राप्ति का मार्ग बताया। चित्तौड़गढ़ में भी संघ प्रमुख श्री के सान्निध्य में कार्यक्रम आयोजित हुआ, इस अवसर पर उद्‌बोधन में आपने संस्कार निर्माण को वर्तमान की महत्त्वपूर्ण आवश्यकता माना, जिस पर समाज में किसी प्रकार का चिंतन नहीं हो रहा है, संघ इसी पूर्ति के लिए सतत् संस्कार निर्माण के कार्य में लगा हुआ है। सभी कार्यक्रमों में माननीय संरक्षक श्री द्वारा प्रदत्त नव वर्ष संदेश का पठन किया गया।

संस्कार निर्माण शिविरों का आयोजन :- 15 दिसम्बर से 16 जनवरी के मध्य बालक वर्ग में तीन प्राथमिक प्रशिक्षण शिविर, मातृशक्ति वर्ग में एक प्राथमिक प्रशिक्षण शिविर तथा बालक वर्ग में सात माध्यमिक प्रशिक्षण शिविरों का आयोजन किया गया। जिनमें 1200 बालक-बालिकाओं ने भाग लिया। मातृशक्ति शिविर संचालिकाओं का एक शिविर आलोक आश्रम में आयोजित हुआ, जिसमें 26 शिविर संचालिकाओं ने प्रशिक्षण प्राप्त किया।

श्री क्षात्र पुरुषार्थ फाउण्डेशन की तीन दिवसीय कार्यशाला का आयोजन 4 से 6 जनवरी को सोजत सिटी के हरियामाली गाँव के एस. एस. पब्लिक स्कूल में हुआ। जिसमें वर्ष 2024 के कार्यों की समीक्षा की गई तथा वर्ष 2025 की कार्य योजना बनाई गई।

पोस्टर विमोचन :- 25 जनवरी, 2025 को पूज्य तनसिंह जी की 101वीं जयन्ती के अवसर पर बाड़मेर स्थित आलोक आश्रम में पूज्य श्री के नव निर्मित स्मारक का लोकार्पण समारोह आयोजित किया जा रहा है, जिसका पोस्टर विमोचन 3 जनवरी को माननीय संरक्षक श्री भगवान सिंह जी रोलसाहबसर द्वारा किया गया।

श्री क्षात्र पुरुषार्थ फाउण्डेशन का स्थापना दिवस कार्यक्रम :- 12 जनवरी को श्री क्षात्र पुरुषार्थ फाउण्डेशन के 7वें स्थापना दिवस पर 35 स्थानों पर क्रार्यक्रम आयोजित हुए। आलोक आश्रम में आयोजित कार्यक्रम में माननीय संरक्षक श्री ने उद्‌बोधन में कहा कि फाउण्डेशन मानवीय मूल्यों के लिए कार्य कर रहा है यह बड़ा महान कार्य है तथा महान कार्य पशमेश्वर की कृपा बिना पूरा नहीं हो सकता। परमेश्वर की कृपा तभी मिलेगी जब हम ईमानदारी तथा निष्ठा से निरन्तर कार्य करते रहें।

अन्य सामाजिक समारोह :- 22 दिसम्बर को जोधपुर में राजपूत प्रतिभा सम्मान समारोह आयोजित किया गया। 4 जनवरी तलोजा मुंबई में स्नेह-मिलन समारोह आयोजित किया गया। 5 जनवरी को अखिल भारतीय मेवाड़ राजपूत सभा ने उदयपुर में प्रतिभा सम्मान समारोह तथा रक्त दान शिविर का आयोजन किया। 5 जनवरी को ही रतनगढ़ (चूरू) में क्षत्रिय कर्मचारी स्नेह-मिलन आयोजित किया गया। 7 जनवरी श्रद्धेय आयुवान सिंह जी हुडील की पुण्य तिथि पर उदयपुर, जयपुर में श्रद्धांजली सभा का आयोजन किया गया।

10 जनवरी वीर अमर सिंह राठौड़ की 412वीं जयन्ती नागोर में मनाई गई।

●

चलता रहे मेरा संघ

(दंपती शिविर भारद्वाज आश्रम, भरुंच (गुजरात) में 6-2-2008 को माननीय भगवान सिंह जी रोलसाहबसर द्वारा दिए गए उद्‌बोधन का संक्षेप)

श्री क्षत्रिय युवक संघ गीता पर आधारित है। इसलिए यदि श्री क्षत्रिय युवक संघ को समझना है तो गीता को समझना आवयश्यक है। वास्तव में समझना तो तब होता है, जब जो जानकारी मिली, समझी उस समझ पर ही चलें, अपना जीवन उस समझ के अनुसार चले। अर्थात् जीवन व्यवहार वैसा ही बन जावे। गीता ऐसा ग्रन्थ है जो पूरे विश्व में पहुँचा है। अनेक लोग ऐसे हैं जिनको पूरी गीता कंठस्थ है। परन्तु हमारी कौम का यह दुर्भाग्य है कि उसे इस बारे में कोई रूचि नहीं है।

गीता का उपदेश देने वाले श्रीकृष्ण क्षत्रिय हैं। जिसको उपदेश दिया गया वह अर्जुन भी क्षत्रिय है। श्रीकृष्ण ने अर्जुन को जो उपदेश दिया वह क्षात्रधर्म का पालन करने के लिए दिया गया। क्षात्रधर्म का पालन करने वाला ही तो क्षत्रिय होता है। आज हम क्षात्रधर्म के मार्ग पर न चलें तो हम क्षत्रिय कैसे कहे जा सकते हैं। हमने क्षात्रधर्म का पालन करना छोड़ दिया, कर्तव्य पालन छोड़ दिया तो हमारा इतिहास बनना ही बन्द हो गया। 200-250 वर्षों से संघर्ष करना ही छूट गया। खोखे रह गए, अन्दर का सामान (कर्तव्य पालन) ही नदारद है।

पहले हमने बर्बर जातियों से, जो भारत में प्रवेश चाहती थी, खूब संघर्ष किया। अनेक बार आक्रमणकारी आए और मार खाकर लौट गए। फिर धीरे-धीरे संघर्ष तो रहा, पर कारण बदल गया। पहले कारण था बर्बर जाति के आतताइयों को देश में घुसने से रोकने का, लेकिन फिर हमारा चरित्र गिर गया। हम देश में ही परस्पर उलझ गए। काम पिपासु हो गए। निजी स्वार्थों ने उद्देश्य ही बदल दिया। वीरता तो बढी पर चरित्र गिर गया। वीरता और त्याग का हेतु अब वह नहीं रहा जो पहले था। हेतु अब गिर गया। बाहर से आए बनियों (अंग्रेजों) ने गुलाम बना दिया। सब गया पर ऐंठन नहीं गई।

साधनों की प्राप्ति में ऐसे लगे कि साधन को ही ध्येय बना लिया। वास्तविक साध्य खो जाने से जीवन ही शून्य हो जाता है। साध्य से भटक गए पर बीज का नाश नहीं हुआ। उस बीज की रक्षा की जावे और उसका सदुपयोग हो, यह आवश्यक है और उसी आवश्यकता की पूर्ति के लिए श्री क्षत्रिय युवक संघ प्रयासरत है। पूज्य तनसिंह जी ने समाज की इस स्थिति को समझा और यह संकल्प जाग्रत हुआ कि समाज में वह योग्यता पैदा की जाए कि जिससे समाज क्षात्रधर्म का पालन कर सके।

क्षात्रधर्म की कल्पना आदर्श राज्य की होती है, जैसा रामराज्य। उस कल्पना को समझने के लिए राम के परिवार और राम के राज्य को समझना होगा। रामचरित मानस के उत्तर काण्ड में रामराज्य की चर्चा है। उसे पढ़ें तो समझ सकते हैं। पारिवारिक जीवन का आदर्श राम परिवार है। हम हमारा परिवार उस तरह का बना सकें तो क्षात्रधर्म का बीज पनप सकेगा। परिवार में ही वे संस्कार स्थापित किए जा सकते हैं जिनसे क्षात्रधर्म पालन का पथिक बन सके। पति व पत्नी दोनों का यह दायित्व होता है कि भावी पीढ़ी को कर्तव्य पालन का राहगीर बनाएँ। इसी के लिए दंपती शिविरों का आयोजन किया जाता है। आप सभी से यह निवेदन है कि गीता पढ़ें और रामचरित मानस पढ़ें। जो पढ़ें उसी के अनुसार जीवन व्यवहार अपनाएँ। इससे दोहरा लाभ है। पढने से ज्ञान होगा, जीवन सुधरेगा, नई पीढ़ी को सीख दे सकेंगे। दूसरा लाभ है-अगला जीवन अच्छा होगा। अत: लाभ उठाने के लिए संकल्प लेकर चल पड़ें।

पूज्य श्री तनसिंह जी (के सम्बन्ध में)

''जो कुछ देखा, समझा व अनुभव किया''

– चैनसिंह बैठवास

पूज्य श्री तनसिंह जी ने लिखा कि लगभग 20 वर्ष पहले की बात है राज्य सरकार का आज जो एक बड़ा अफसर है, मेरे पास एक समाचार पत्र की सहायता के लिए आया। उसने जो चित्र मेरे समाज और समाचार पत्र का खींचा वह शब्दचित्र मेरे रोम-रोम में बैठ गया, मेरी सामान्य सहायता उसे बहुत बड़ी सहायता लगी क्योंकि मेरे जैसे से इतनी सहायता की वह आशा भी नहीं करता था। वह मेरे सहयोग से प्रोत्साहित हुआ किन्तु मैं भी साथ ही साथ इस बात की खोज के लिए प्रोत्साहित हुआ कि आखिर हमारी इस दयनीय हालत का कारण कौन है और क्या उसका निराकरण हो सकता है। **मेरे दृष्टिकोण की सापेक्षता** के कारण ही मुझे प्रतीत हुआ कि सभी विपदाओं का कारण मैं हूँ और चाहूँ तो सब विपदाएँ दूर कर सकता हूँ।

दुनिया की नजर में यह मेरी बाल सुलभ भावुकता थी। मैं व्यवहारिक जीवन की कटुताओं से ऊपर उठकर कल्पना के स्वप्न लोक में विचरण कर रहा था और यह थी मेरी पहली भूल। यदि मैं उस दिन इस बात को सोच लेता कि मेरे ऊपर ही कार्य की कौनसी ठेकेदारी है और मैं आवश्यक रूप से उत्तरदायित्व को क्यों लूँ? तो सम्भव है, मैं इस कण्टकमय मार्ग पर कभी नहीं होता और सुखपूर्वक रहीस बना रहता।

पूज्य श्री तनसिंह जी ने लिखा कि कुछ लोग आज भी यह दोष निकालते हैं कि भावुकता की एक उम्र होती है और उस उम्र तक हम बिना आगा-पीछा विचारे कार्य करते रहते हैं लेकिन आयु के बढ़ने के साथ ज्यों-ज्यों भावुकता व्यवहारिकता में बदलती है त्यों-त्यों हमारा उत्साह भंग होता जाता है। कार्य के उत्साह की शिथिलता का यह कारण मुझे सही नहीं लगता। उम्र के साथ भावनाओं की घटी-बढ़ी का कोई सम्बन्ध नहीं है पर इतना जरूर है कि बाल्यावस्था में हमारे दृष्टिकोण में सर्वाधिक पवित्रता और निस्वार्थता होती है, उसे निष्कलंक रूप में अन्त तक रखना हर एक के लिए संभव नहीं है। मेरे विचार से यह भावुकता का परिणाम नहीं, वस्तुत:-जगत के दृष्टिकोण में परिवर्तन का परिणाम है। यदि एक दृष्टा के रूप में जगत को देखते हैं तो दुनिया की भयंकर स्थिति हमें विचलित नहीं कर सकती है। जब तक हम निष्क्रिय दृष्टि के रूप में विचलित होकर सक्रिय कार्यकर्ता नहीं बनते तब तक हमसे और हमारी जीवनी से संसार अप्रभावित रहता है। इस प्रकार विचलित होना बौद्धिक प्रक्रिया भी है अतः बुद्धि और भावनाओं को सर्वथा पृथक नहीं किया जा सकता किन्तु जब तक ईमानदारी से हम अपने उत्तरदायित्व को नहीं सोचते जो, वास्तव में भावनाओं का क्षेत्र न होकर बौद्धिक सार्थकतों का स्वरूप है- तब तक कार्य क्षेत्र में उतरना सम्भव नहीं। जब एक बार उतर जाते हैं, तो उस पूर्वोक्त दृष्टिकोण में परिवर्तन नहीं आता, तब उससे विमुख भी नहीं बना जाता।

तब प्रश्न रहता है वह आखिर मेरी भूल कैसे हुई? लोग मजदूरों का नारा लगाते हैं किन्तु वास्तव में यह जमाना अब भी शहंशाहों का है। आज के समाज का दृष्टिकोण भी शाही है। सभी लोग अपना सुख चाहते हैं। पढ-लिखकर आराम चाहते हैं। किन्तु योग्य बनकर दुख उठाना केवल मजदूर जानता है- केवल भिखारी जानता है। मैं जिस जमाने में यह लेख लिख रहा हूँ- अब जमाने के दृष्टिकोण को ध्यान में रखकर लिख रहा हूँ। जब मैं अपने ही जैसे सैंकड़ों बनाता हूँ, तो लोग कहते हैं, मैं लोगों के

जीवन को बरबाद कर रहा हूँ। मैं जानता हूँ कि इस धनी जमाने में मैं निरी और निपट मूर्खता कर रहा हूँ और यह मेरी ऐतिहासिक भूल है क्योंकि इतिहास की किसी भूल का सम्बन्ध वर्तमान और भविष्य के संधिस्थल तक ही है। भविष्य में भूल भूल ही रहेगी या प्रेरणा का केन्द्र बनेगी, इसका निर्णय केवल भविष्य कर सकेगा और तब तक मैं स्वयं और मेरा भिखारी का सम्पूर्ण कार्य एक जीती-जागती भूल कहलायेगा।

पूज्य श्री तनसिंह जी ने लिखा कि **मैंने अपना जीवन देकर औरों के जीवन को खरीदने की परम्परा का श्रीगणेश किया।** मैं चाहता तो इस परिस्थिति से अपने आपको सहज ही बचा सकता था किन्तु जब उतरने लगा तो गहरे से गहरा उतरता ही गया, वह एक विचित्र अवस्था थी। जीवन का प्रत्येक क्षण असह्य लग रहा था, जैसे बहुत कुछ करने का सोच कर भी कर नहीं पा रहा हूँ। मैं अपने साथियों को धोखा दे रहा हूँ फिर भी किसी साथी को विश्वास दिलाने की आवश्यकता ही महसूस नहीं हो रही थी, केवल एक ही बात खा रही थी कि मैं अपने आपको कैसे विश्वास दिलाऊँ? यह वह समय था जब देश पर संकट के बादल छाये थे किन्तु मेरे चारों ओर इसकी छाया भी नहीं थी। रात्रि का शान्त प्रहर था। सर्दी का दौर चल रहा था। वृक्ष और प्रकृति बिलकुल नीरव थी और नदी में सहज मन्थर गति से जल प्रवाहित हो रहा था। प्रकृति भगवान के मूर्तिमान स्वरूप सी होकर मुझे गम्भीरता से पुनः विचार करने की बात कर रही थी। कहीं भी भावनाओं और उत्तेजना का प्रश्न नहीं था। नींद उचट गई थी। बाहर आकर तारों से पूछा, आकाश से पूछा। वे सब मौन थे, जैसे इस निर्णय पर अडिग थे- तुम जानो और तुम्हारा काम जाने, पर जो कुछ करो फिर सोच लो और मैंने सोच ही लिया कि मुझे अपने आपको बाँध लेना चाहिए। अनुशासन के लिए आत्मानुशासन हो। विवेक से ही निर्णय किया और यह थी मेरी ऐतिहासिक भूल। मैं आज कभी अपने आपको क्षमा नहीं कर सकता। यह कभी नहीं कह सकता कि मैंने जो कुछ किया, भावुकता से ही किया था लेकिन इस ऐतिहासिक भूल के परिणाम भी हुए। मेरी कृति के कारण एक नई परम्परा कायम हो गई। भिखारियों की संख्या जुटने लगी। अपना जीवन देकर सबका जीवन खरीदने की परम्परा कायम हो चुकी थी, किन्तु एक बड़ा बखेड़ा गले ले लिया। बचने का अब कोई रास्ता नहीं रहा। बचने के क्षण अब निकल गये।

हाँ, यह कह सकते हो कि यह तो भूल नहीं हुई, पर दुनिया मुझे यही कहती है कि तुम भूल पर हो। मेरे दृष्टिकोन से यदि दुनिया देखना शुरू कर दे तो समस्या ही नहीं रहती पर भिन्नता के कारण ही मैं जिस कर्तव्य को हमारे जीवन की सार्थकता और गहन उत्तरदायित्व समझता हूँ उसी को दुनिया जीवन की भूल कहती है और इसलिए मैं इसे भी अपनी ऐतिहासिक भूलों में शुमार करता हूँ।

इसके बाद मेरी भूलें बड़ी पेचिदा भूलें हुई। आज तक समझ नहीं पाया है कि वास्तव में परस्पर विरोधी आचरण में कौनसी भूलें थी और कौनसी भूल नहीं थी- (1) किसी को बुरा न बताओ, (2) बुरे की बुराई अपने ऊपर ले लो और यह सिद्ध करो कि हम सब एक से ही हैं, (3) कोटुम्बीय जीवन से पृथक किसी महत्त्वाकांक्षा को प्रोत्साहित न करो, उसे रोको, यह व्यक्तिगत महत्त्वाकांक्षा है। कार्य तो यह तीनों ही मैंने किये- किसी को बुरा न बताया, बुरे की बुराई अपने ऊपर लेकर यह दिखाया कि हम सभी एक से हैं और कौटुम्बीय जीवन से पृथक किसी महत्त्वाकांक्षा को प्रोत्साहित नहीं किया। किन्तु तीनों ही भूल बताई गई। सच तो यह है कि कोई साथी यह समझ ही नहीं सके कि इसके पीछे राज क्या है?

किसी को बुरा न बताना, किसी पर आक्षेप न करना और किसी के भेद को प्रगट न करना हमारे चरित्र की विशेषता बताई जाती है। इसी विशेषता के कारण हर भूल पर मौन धारण करना मैंने नीति और सिद्धान्त समझा, किन्तु बाद में यह अनुभव हुआ कि भूल तो भूल ही है।

(शेष पृष्ठ 23 पर)

कविवर रवीन्द्रनाथ टैगोर का अर्पण व कर्मवीर पूज्य तन सिंह जी का समर्पण

– अजीत सिंह धोलेरा

बंगाल के कविवर रवीन्द्रनाथ के अपने गीतों का संग्रह **''गीतांजलि''** को विश्व का श्रेष्ठ सम्मान नोबेल पुस्कार प्राप्ति का सुअवसर मिला था। उस गीतांजलि में एक गीत है जिसका हिन्दी रूपान्तरण देखें –

उस समय गाँव के द्वार-द्वार पर भिक्षा माँग रहा था जब तेरा स्वर्ण रथ दूरी पर दिखाई दिया, मैंने मानो कोई सुन्दर सपना-सा देखा हो। मेरे विस्मय की सीमा न थी कि यह राजाओं का राजा कौन है जो इधर आ रहा था? मेरी आशाओं ने सिर उठाया, सोचा शायद मेरे दुर्भाग्य की घड़ियाँ समाप्त हो गयी। मैं वहीं खड़ा हो गया और सोचने लगा, कब रथ की धूल में स्वर्ण-मुहरें गिरेगी और कब राजा के हाथ भिखारियों की झोलियाँ भरने को उठेंगे।

वह रथ अचानक वहीं ठहरा जहाँ मैं खड़ा था। तेरे नेत्र मुझसे मिले, तू मुस्कराता हुआ रथ से नीचे उतरा। मैंने सोचा, मेरा भाग्य सूर्य अब उदय होने ही वाला है। तब अचानक तूने मेरे पास आकर अपना दाहीना हाथ मेरी ओर बढ़ा दिया और कहा-''मुझे देने को तू जो लाया है दे दो।''

कितना विचित्र उपहास था। एक राजा ने भिखारी के सामने भिक्षा के लिए हाथ फैलाया था। मैं कुछ देर विस्मय विमुग्ध खड़ा देखता रहा फिर अपनी झोली से चावल की सबसे छोटी कणी निकाल कर तेरे हाथ में रख दी।

किन्तु मेरे आश्चर्य की सीमा नहीं रही जब दिन ढलने पर मैंने अपनी झोली खाली की और देखा कि मेरी झोली में पड़े चावल की कणियों में एक कणी सोने की भी थी। मैं रोने लगा, बेहद रोने लगा। जो कुछ मेरी झोली में था, वह सभी क्यों न तुझे दे डाला।

अब कविवर के इस गीत से प्रेरित होकर पूज्य तनसिंह जी द्वारा रचित सहगायन देखे –

बड़े सवेरे किसी दिन पाया,
जैसे कुटिया में कोई है आया।
बाहर खड़ा था सोने का रथ प्यारा,
भीतर एक दानी राजन आया।

आज जायेगी सोचा, मेरी गरीबी,
मेरे राजा की होगी, मेरी नसीबी,
टूटेंगे सारे, खुशियों के ताले, कुटिया वाले
ऐसा सुन्दर सा आया सवेरा
मेरे सपनों का आया चितेरा ।।1।।

माँगूँगा कण्ठों की मोती की माला
या प्रभुता की कोई नशीली सी माया
लेकिन उसी ने, मुझसे ही माँगा, कुटिया वाले
मेरे लिए हो दे दो मीत मेरे
परदेशी है आया भरोसे तेरे ।।12।।

ठगा सा खड़ा हूँ क्या दूँ हाथ में तेरे
जीवन की पुस्तक के पन्ने बिखेरे
सोचा जो है वो, देना तो होगा, कुटिया वाले
ले लो या तो मेरे का मोह मेरा
या मैं खुद ही हो जाता हूँ तेरा ।।3।।

हाथ पकड़ के उसने रथ में बिठाया
युगों की मंजिल का मुझे राही बनाया
मुड़के पूछा, क्या पछताए, कुटिया वाले
मैंने तो बिन खोजे ही पाए
इतना पाके तो पागल पछताए ।।4।।

अब दोनों गीतों के तुलनात्मक अध्ययन द्वारा दोनों महानुभावों की गरिमा समझने का प्रयत्न करें-

श्री टैगोर के गीत में	पूज्य तनसिंहजी के गीत में
1. भिखारी गाँव के द्वार द्वार पर भिक्षा माँगता फिरता हैं।	1. भिखारी अपनी कुटिया में बैठा है।
2 समय का कोई जिक नहीं है।	2. समय बड़े सवेरे का है। यह समय बड़ा पवित्र माना जाता है।
3. राजा का स्वर्ण रथ दूर दूर दिखाई देता है।	3. राजा का सोने का रथ कुटिया के बाहर खड़ा है ।
4. भिखारी को असीमित विस्मय होता है।	4. भिखारी का कोई मनोभाव व्यक्त नहीं किया गया है
5. भिखारी सोचता है कि शायद मेरे दुर्भाग्य की घड़ियाँ अब समाप्त होने जा रही हैं।	5. भिखारी सोचता है कि आज जाएगी मेरी गरीबी । अब, जिसमें खुशियाँ बन्द पडी थी उस कमरे के ताले टूटेंगे। मेरे जीवन में खुशी ही खुशी होगी। मेरे सपनों का चितेरा अर्थात् सपनों को साकार कर देने वाला आ गया है।
6. भिखारी स्वर्ण मोहरों से सन्तुष्ट हैं।	6. भिखारी पहले तो राजा के कण्ठ की मोती की माला माँगने का सोचता है। एक एक मोती लाखों रूपयों का होता है फिर सोचता है ''नहीं अमीरी से अधिक मूल्यवान प्रभुता-सत्ता होती है।'' भिखारी सोचता है कि दीवान पद मांग लूँ राज्य का खजांची बना देने का कहूँ प्रधान मंत्री बन जाऊँ। प्रभुता को भिखारी नशीली माया मानता है यह सही है। सत्ता का नशा अजीब सा होता है। नशा सदा भ्रामक होता है। अतः वह माया ही है।
7. राजा रथ को भिखारी के पास खड़ा करवा के मुस्कराता रथ से नीचे उतर आता है।	7. राजा भिखारी की कुटिया में प्रवेश करता है।
8. राजा भिखारी से मांगता है कि मुझे देने को तू जो लाया हो दे दो।	8. राजा भिखारी को मित्र कहता है और कहता है कि मैं परदेशी भरोसा लेकर तेरे पास आया हूँ। अतः मेरे लिए जो हो वह मुझे दे दो।
9. राजा का मांगना भिखारी को चिचित्र उपहास लगता है और विस्मय मुग्ध खड़ा देखत्ता है।	9. जैसे ठगा गया हो भिखारी असमंजस में खड़ा रहता है। यहाँ भिखारी सोचता है कि राजा को क्या दूं क्योंकि उसके जीवन की पुस्तक के पन्ने तो बिखरे पड़े हैं, अर्थात उसके पास देने जैसा कुछ है ही नहीं। और यह भी सोचता है कि जब राजा खुद मांगता है तो देना तो होगा ।

10. भिखारी अपनी झोली से चावल (वो भी भिक्षा में मिला होगा) की सबसे छोटी एक कनी निकालकर राजा के हाथ में रख देता है।	10. भिखारी राजा से प्रार्थना करता है कि जिसको मोह वश मैं अपना मानता हूँ वह मोह ले लो या मैं खुद हो जाता हूँ तेरा।
11. भिखारी का राजा को अर्पण अपनी (मांग कर प्राप्त) सम्पत्ति का एक बिलकुल छोटा भाग है। यह भिखारी राजा को वह देता है जिसको वह अपना मानता था ।	11. भिखारी का यहां पूर्ण समपर्ण है 'इदम् न मम' नहीं, 'किमपी न मम' मेरा कुछ भी नहीं है। जो है वह तेरा ही है। तेरा तुझ को अर्पण।
12. राजा मिला हुआ दाना लेकर चला जाता है।	12. यहाँ भिखारी का पूर्ण समर्पण ले कर राजा चला नहीं जाता बल्कि वह भिखारी का हाथ पकड कर अपने रथ में बैठा देता है अर्थात पूर्ण समर्पण के बदले में पूर्णता, मानव जीवन का अन्तिम साध्य परमेश्वर पद दे देता है।
13. भिखारी को अपने छोटे दान के बदले में देखने में छोटी मगर मूल्य में बहुत बड़ी सोने की कनी मिलती है। यह देख कर वह बेहद रोने लगता है और सोचता है कि जो कुछ मेरी झोली में था वह सभी क्यों न दे दिया? यदि दे देता, तो पूरी झोली स्वर्णिम चावल से भर जाती ।	13. यहाँ भिखारी को अपने पूर्ण समर्पण का न कोई अफसोस है न कोई रोना है। फिर राजा मुड़ के पूछता है क्या पछताए? यहाँ पछतावा की कोई बात ही नहीं है। भिखारी कहता है मैने तो बिन खोजे ही पाए, इतना पाके तो पागल ही पछताए।
14. भिखारी पछतावा करता है।	14. यहाँ एक अदभुत नजारा दिखता है। राजा मुड़के पूछता है। अर्थात भिखारी पूज्य तनसिंह जी पीछे बैठे हैं। राजा सारथी है पूज्य श्री रथी हैं। सारथी रथी से नीचे बैठता है। रथी ऊपर सिंहासन पर बैठता है।

उस चित्र की यहाँ कल्पना करें, जहाँ श्री कृष्ण रथ चला रहे हैं। अर्जुन युद्ध न करने का निश्चय करके बैठ गया है। तो श्री कृष्ण मुड़कर अर्जुन को उसके कर्तव्य का बोध कराते हैं।

फर्क इतना ही है कि कर्तव्यच्युत अर्जुन कि जगह पूर्ण समर्पित पूज्य तनसिंह जी हैं।

बोध- प्रत्येक मनुष्य के जीवन में देने के अवसर आते ही हैं। जो जाग्रत हैं, वह देता है। जिसने कभी दिया ही नहीं, लिया ही लिया है देने का अनुभव या अभ्यास ही नहीं है। अतः देने को विवश ही हो, तो देने के वक्त पसीना आ जाता है और प्रयास यह करता है कि कम से कम दिया जावे।

याद रहे! देने वाले का कभी कुछ जाता नहीं है। जो दिया वह भगवान के बैंक में जमा होता है। ''जो जाये वह जमा।'' वह जमा धन मूलधन से कई गुना मिलेगा ही। टैगोर के भिखारी को चावल की एक कनी के बदले में सोने की एक कनी मिलती है। तो पूज्य तनसिंह जी को पूर्ण समर्पण के बदले में पूर्णत्व प्राप्त होता है।

अतः दे दो! दे दो!
मेरी नन्हीं सी झोली, तू दातार।।
वो दातार मै बनूं, यही अभीप्सा।

भरे हलाहल हैं ये विष के प्याले....

– रेंवत सिंह पाटोदा

हलाहल विष वह होता है जिसको पीने के बाद जीवित रहने की संभावना ही शेष नहीं रहती। पौराणिक वर्णन के अनुसार समुद्र मंथन से ऐसा ही हलाहल विष निकला था जिसकी उपस्थिति मात्र से ही समस्त देवता और दानव आतंकित हो गये। जिसको धारण करने वाला कोई नहीं मिला तब भगवान शिव से प्रार्थना की गई और उन्होंने इसे धारण किया लेकिन उन्होंने भी इसे कंठ में ही रोक लिया, उदर में नहीं जाने दिया क्यों कि ऐसा करने पर यह हलाहल विष उनके लिए भी संकट पैदा कर सकता था। पौराणिक वर्णन के अनुसार कंठ में धारण के परिणाम स्वरूप भी भगवान शिव शंकर को एक रात्रि तक अचेत रहना पड़ा जिसके उपलक्ष में आज हम शिवरात्रि मनाया करते हैं। उपरोक्त विवरण से स्पष्ट है कि हलाहल विष सर्वाधिक मारक विष होता है और इसे पचाने में भगवान शंकर भी सक्षम नहीं हैं।

पूज्य तनसिंह जी ने परमेश्वर से अपनी प्रार्थना में इसी हलाहल विष का उल्लेख किया है जो इस आलेख का शीर्षक है। पूज्य तनसिंह जी ने ऐसा हलाहल विष किसे माना है, उनके अनुसार ये प्याले कौन से हलाहल विष से भरे हुए हैं। इसको स्पष्ट करते हुए वे आगे लिखते हैं, **'दिल में हैं द्वेष के हाय फफोले।'** इससे यही समझ में आता है कि हमारे समाज में, हमारे परिवार में और इस संसार में द्वेष ऐसा ही हलाहल विष है जिसको पीने के बाद जीवन की संभावनाएँ शेष नहीं बचती। पूज्य तनसिंह जी ने द्वेष को हमारी कौम के सबसे बड़े शत्रुओ में से एक माना है और इसीलिए अनेक स्थानों पर इसका जिक्र भी किया है। उन्होंने एक स्थान पर लिखा है, –

'द्वेष दंभ की हुई थी फूट से सगाई।'

अन्यत्र वे लिखते हैं,

'डाह भरी कुटिया पर मेरा महल हुआ मतवाला है,
अपना सब कुछ बेच तभी कुटिया से लाया प्याला है।'

ऐसा ही एक और गीत में वे लिखते हैं.

'मेरे समाज की कालरात्रि में सूर्य उगा है,
द्वेष दंभ का भूत भयंकर तभी भगा है।'

इस प्रकार स्थान स्थान पर गद्य और पद्य में उन्होंने इस द्वेष का उल्लेख करते हुए बताया है कि किस प्रकार इसने हमारे लिए हलाहल विष का काम किया है और इसीलिए इसका शिकार होकर हमारा वैभवशाली अतीत चिंतनीय वर्तमान में बदल गया है। वर्तमान में भी यह उतनी ही तीव्रता से हमारे भीतर अपनी उपस्थिति बनाये रखकर हमारे भविष्य को अंधकारमय बनाये रखने का बंदोबस्त कर रहा है। इतिहास के उदाहरणों में जायें तो पूरा इतिहास इसका कार्यक्षेत्र बना पाते हैं और कदम कदम पर इसके हलाहल विष जैसे प्रभाव के दर्शन होते हैं। महाभारत के नायक अर्जुन से यदि दानवीर कर्ण द्वेष नहीं रखता तो क्या उसका महापुरुषत्व कलंकित होता? यदि कृतवर्मा सात्यिकी से द्वेष नहीं करता तो क्या वह भगवान कृष्ण की चाह के विरुद्ध कौरव पक्ष से लड़ रहा होता? यदि द्रोणाचार्य का द्रुपद से द्वेष नहीं होता तो क्या उनके जैसा महापुरुष हस्तिनापुर का वेतन भोगी शिक्षक बनता और उस वेतन के अहसान तले दुर्योधन जैसे दुराचारी का सहयोगी बनता? हमारे मध्यकालीन इतिहास में तो पग पग पर इसके उदाहरण मिल जायेंगे जब इस हलाहल विष ने हमारे जातीय जीवन को ही अवरुद्ध नहीं किया बल्कि यह संपूर्ण भारतवर्ष के जीवन को अवरुद्ध करने का कारण बन गया। आज भी हम यदि आत्मविश्लेषण की दृष्टि से देखना प्रारंभ करें तो हमारे भीतर और बाहर चारों ओर इसकी मजबूत उपस्थिति को देख सकते हैं।

इसीलिए पूज्य तनसिंह जी ने द्वेष को हलाहल विष की संज्ञा दी और परमेश्वर से समाज की इस स्थिति बाबत निवेदन किया कि हम सबके दिलों में द्वेष के फफोले हैं जो हमें एक परिवार, एक समाज और एक राष्ट्र के रूप में जीवन जीने की ओर बढ़ने नहीं देते हैं। इसलिए हमारी व्यक्तिगत, पारिवारिक, सामाजिक उन्नति के लिए इन फफोलों से मुक्त होना आवश्यक है। हमारी दैहिक, दैविक, भौतिक और आत्मिक उन्नति के लिए भी इन फफोलों से मुक्त होना आवश्यक है। ये फफोले चाहे हमारे दिल में हों, चाहे हमारे साथी के दिल में हों चाहे मित्र के दिल में हों चाहे शत्रु के दिल में हो, परस्पर सभी की उन्नति में अवरोधक ही नहीं होंगे बल्कि अंत में हलाहल विष का स्वरूप धारण कर हमारे विनाश के कारण भी बन जायेंगे। इसलिए इन फफोलों से मुक्ति पानी आवश्यक है। इसीलिए पूज्य तनसिंह जी ने इनसे मुक्ति पाने का उपाय बताते हुए परमेश्वर से प्रार्थना की है,

'जातीय गगन में चन्द्र सा बन प्रभु,
शीतल चांदनी मैं छिटकाऊं।'

फफोले त्रास देते हैं, जलन पैदा करते हैं और ऐसे में उनके त्रास व जलन से मुक्ति के लिए शीतलता की आवश्यकता होती है। हमारी त्वचा यदि जल जाये और उससे फफोला हो जाये तो हम उस पर शीतल जल डालते हैं या शीतलता प्रदान करने वाली मरहम लगाते हैं। द्वेष से पैदा होने वाले फफोलों पर भी ऐसी ही शीतलता की आवश्यकता है। द्वेष का विपरीत गुण प्रेम होता है और प्रेम शीतल होता है। प्रेम की छाँह में हर कोई शीतलता को अनुभव करता है इसलिए पूज्य तनसिंह जी इस हलाहल विष से संपूर्ण मानवता को बचाने के लिए चंद्रमा की भांति संपूर्ण संसार को प्रेम की शीतलता प्रदान करना चाहते हैं, और इसके लिए हमारी इस राजपूत जाति के गगन में ऐसे शीतल चंद्रमाओं के उदित होने का मार्ग प्रशस्त करना चाहते हैं जिससे संपूर्ण संसार में शीतलता प्रसारित हो सके। सभी के दिलों को प्रेम से सराबोर करना चाहते हैं जिससे उन दिलों में पनपे द्वेष के फफोले ठीक हो सकें। इस प्रकार उन्होंने हमारे भविष्य और वर्तमान को हलाहल विष से बचाने के लिए प्रेम रूपी अमृत का प्रसार करने का विचार दिया, लेकिन कोई भी विचार कितना ही उत्तम क्यों ना हो, जब तक उसे क्रियान्वित नहीं किया जाये तब तक वह केवल मस्तिष्क के व्यायाम मात्र तक ही सीमित रहता है। पितामह भीष्म के विचार तो सदैव धर्म की स्थापना के रहे लेकिन आचरण अधर्म के सहयोगी का ही रहा जिसका परिणाम उन्हें सर शैय्या पर शयन के रूप में भोगना पड़ा और अपने ही कुल को अपनी आँखों के समक्ष समाप्त होते भी देखना पड़ा। इसलिए सिद्धांत का महत्त्व आचरण द्वारा ही प्रतिपादित होता है और यही वास्तविक भक्ति होती है। आचरण हीन ज्ञानी परमेश्वर के प्रेम के पात्र नहीं बन पाते और परमेश्वर का प्रेम पाना ही भक्त का लक्ष्य होता है। इसलिए भक्ति का वास्तविक स्वरूप विचार को आचार में बदलना ही होता है। इसीलिए पूज्य तनसिंह जी प्रार्थना करते हैं,

'विचारानुकूल आचार बनाकर,
वास्तविक भक्ति से तुम्हें रिझाऊं।'

भक्त प्रेमी होता है और परमेश्वर उसके प्रेमास्पद होते हैं। प्रेमी का लक्ष्य अपने प्रेमास्पद को रिझाना होता है, और रिझाने का उपयुक्त मार्ग विचारानुकूल आचरण ही है। इसीलिए पूज्य तनसिंह जी ने द्वेष के इन फफोलों के त्रास से संसार को बचाने के लिए प्रेम की शीतलता की चांदनी को छिटकाने का जो विचार रखा, उस विचार को आचरित करने का मार्ग भी उन्होंने प्रशस्त किया। हम सब इस मार्ग पर उनकी ही कृपा से आरूढ़ हुए हैं इसलिए हमारे लिए यह प्रश्न भी स्वाभाविक है कि क्या हमारे दिलों के द्वेष के फफोलों पर प्रेम की शीतलता की चांदनी बरस पायी है? क्या हम इस जातीय गगन के चंद्रमा बनकर संसार को

(शेष पृष्ठ 32 पर)

शाखा वर्ष

शाखा शिक्षक-संघ के पायनियर

- महेन्द्रसिंह गूजरावास

संघ का मूल कार्य, समूह में रहते हुए संस्कारों के निर्माण हेतु स्वयं कर्मशील बनना और अन्यों को भी कर्मशील बनाना है। इसीलिए इस प्रक्रिया को सामूहिक संस्कारमयी कर्मप्रणाली कहा जाता है।

संघ की कार्य प्रणाली में शाखा इतनी महत्त्वपूर्ण क्यों है? क्योंकि निरन्तर और नियमित रूप से बार-बार अभ्यास ही संस्कार निर्माण की अनिवार्य शर्त है। जब किसी चीज का बार-बार चिन्तन और अभ्यास किया जाता है तो वह धीरे-धीरे आचरण में ढलकर स्वभाव बन जाता है और यही स्वभाव आगे चलकर संस्कार में तब्दील हो जाता है। और संस्कार ही हैं जो हमें इस जन्म में सामाजिकता के साथ विभिन्न उद्देश्यों की पूर्ति का और भावी जन्मों में अपनी देह की यात्रा को सार्थक बनाने का कारण बनते हैं। इसीलिए शाखाओं में निरन्तरता और नियमितता की बात को इतना महत्त्व दिया जाता है।

निश्चित समय और नियत स्थान पर, निरन्तर और नियमित रूप से शाखा लगाने का कार्य जितना कम महत्त्व का दिखाई पड़ता है उतना है नहीं। क्योंकि शाखा का एक घण्टे का समय हमें हमारी चौबीस घण्टों की दिनचर्या को व्यवस्थित करने के लिए पर्याप्त है। और जब हमारी दिनचर्या व्यवस्थित होकर अपनी समस्त क्षमताओं के साथ किसी एक उद्देश्य के निमित्त काम में आने लगे तो भला हमें सफल होने से कौन रोक सकता है!

सितम्बर, 2015 में, बाड़मेर स्थित आलोक आश्रम में शाखा शिक्षकों के प्रशिक्षण शिविर में माननीय सरंक्षक महोदय ने बताया कि शाखा लगाने वाले संघ के पायनियर हैं। अर्थात सही मायने में संघ के अग्रगामी, अगुआ या पथ प्रदर्शक कोई हैं तो केवल शाखा लगाने वाले ही हैं, जो अनुकूलस्य सृजनम् और प्रतिकूलस्य विसर्जनम् के सिद्धान्त को नित्य प्रतिदिन प्रायोगिक रूप से शिक्षण का हिस्सा बनाते हुए, लोक सम्पर्क, लोक शिक्षण से गुजरते हुए लोक संग्रह की आधारभूमि तैयार करने का माध्यम बनते हैं।

संघ की स्थापना के बाद, संघ यात्रा के प्रारम्भिक काल, 1947 में ही संघ के संस्थापक पूज्य श्री तनसिंह जी ने बता दिया था कि-

संघभूमि पर नियमित जाकर ऐसी दीक्षा पावें।
गत वैभव पर धीरज से हम कदम कदम बढ़ जावें।।
हम ऐसा संघ बनावें।।

आईये, पूज्य श्री द्वारा बताये गये इसी सूत्र को लेकर हम रोज शाखा में जायें और शाखा लगायें। शाखाओं के सघन जाल द्वारा **'संघे शक्ति कलौयुगे'** के मंत्र को गुंजायमान करते हुए बुलन्द हो रहे **'जय संघ शक्ति'** के उद्घोष को और तीव्र करें।

जय संघ शक्ति!

क्षार का सागर कितना गुणवान है कि उसे रत्नाकर कहा जाता है। जिसमें रहने वाली प्रत्येक वस्तु को नमक का क्षार नष्ट कर देता है, पर उसी में अमृत भी निकला। लेकिन मंथन करने पर। वह असत्य भी कितना मीठा है जिसमें एक नवीन सत्य का उदय होता है। इसलिए अमृत से पहले निकलने वाले हलाहल को भगवान शिव पी गये।

- पू. तनसिंहजी

संघशक्ति

वैभव से वैराग्य की ओर

– राजेन्द्रसिंह बोबासर

छठी शताब्दी ईसा पूर्व भारत में अनेक छोटे-छोटे राज्य थे, जिन्हें गण राज्य कहा जाता था उन्हीं में से एक था शाक्य गणराज्य। यहाँ के राजा थे शुद्धोधन। इनकी रानी का नाम था महामाया। एक रात रानी महामाया को स्वप्न आता है कि प्रातः काल वो सरोवर में स्नान कर रही है उसी समय एक प्रकाश पुंज सफेद हाथी के रूप में उनकी तरफ आता है तथा उनके गर्भ में समा जाता है। रानी प्रातः काल जागकर यह स्वप्न राजा शुद्धोधन को सुनाती है। राजा इस स्वप्न की चर्चा राज दरबार में करते हैं जहाँ चार शकुन शास्त्री इस स्वप्न की गणना करते हैं। उनमें से तीन शकुन शास्त्रियों का मत होता है कि रानी को स्वप्न में हाथी के दर्शन होते हैं तथा हाथी देवराज इन्द्र का वाहन है, निश्चय ही रानी के देवराज समान यशस्वी पुत्र उत्पन्न होगा तथा वह महान प्रतापी राजा बनेगा। चौथे शकुन शास्त्री का मत था कि रानी को सफेद हाथी के दर्शन हुए हैं सफेद रंग ज्ञान तथा वैराग्य का प्रतीक है अत: पुत्र तो उत्पन्न होगा, पर वह राजा नहीं बनेगा। जिस तरह सूर्य का प्रकाश जो श्वेत दिखाई देता है सारे संसार को प्रकाशवान बना देता है वैसे ही इसके ज्ञान के प्रकाश से सारा संसार प्रकाशवान होगा।

कालान्तर में महारानी महामाय के पुत्ररत्न की प्राप्ति हुई उसका भविष्य जानने के लिए ज्योतिषाचार्य को राज दरबार में बुलाया गया। बालक के जन्म के ग्रह-नक्षत्र देखकर ज्योतिषाचार्य ने बालक का नाम सिद्धार्थ रखा साथ ही कुछ गंभीर हो गये, कुछ देर विचार कर उन्होंने कहा, हे राजन! आपका पुत्र आगे चल कर बहुत प्रसिद्धि को प्राप्त करने वाला होगा, परन्तु राजा बनकर नहीं, वैराग्य धारण कर महान सन्यासी बनकर। राजा चिन्तातुर होकर बोले, इसका कोई उपाय वतायें कि वह सन्यासी न बने। ज्योतिषाचार्य बोले कि इसका तो एक ही उपाय है कि बालक के सामने दुख की अवस्था कभी प्रकट न हो। राजा प्रसन्न हुए उन्होंने वालक के आस-पास ऐसी सृष्टि की रचना करवा दी कि चारों ओर सुख ही सुख नजर आये। गर्मी, सर्दी आदि ऋतुओं के अनुसार महलों का निर्माण करवाया, जगह-जगह सुन्दर सरोवरों, बाग-बगीचों का निर्माण करवाया, सुन्दर पथ बनवाये गये। राजकुमार सिद्धार्थ के मनोरंजन के साधन जुटाए गये। जहाँ भी राजकुमार जाते वहाँ उन्हें सुख ही सुख नजर आता। समय बीतता गया राजकुमार की आयु विवाह योग्य हो गई। सुन्दर-सुशील राजकुमारी यशोधरा के साथ उनका विवाह हो गया। वैभव-विलास में समय व्यतीत होने लगा। कुछ समय उपरान्त यशोधरा ने एक सुन्दर पुत्र को जन्म दिया, जिसका नाम राहुल रखा। राजा शुद्धोधन अब निश्चिंत नजर आने लगे। उन्होंने देखा कि राजकुमार सिद्धार्थ अब पूरी तरह से सांसारिक जीवन में रमण कर रहे हैं।

राजकुमार अब नगर भ्रमण के लिए बाहर जाने लगे, वे रथ में बैठकर सारथी के साथ वार्तालाप करते हुए नगर के दूरस्थ भागों में जाते तथा आनन्द पूर्वक अपना समय बिताते। देवयोग से एक दिन नगर भ्रमण करते समय उन्होंने एक अत्यन्त वृद्ध व्यक्ति को देखा जो बड़ा कमजोर था, उसकी कमर झुकी हुई थी, वो चलते-चलते हॉफ रहा था, लम्बी-लम्बी साँस ले रहा था। राजकुमार सिद्धार्थ ने सारथी से पूछा- यह कौन व्यक्ति है इसकी हालत तो बहुत खराब है यह बड़ा दुखी दिखाई दे रहा है। सारथी बोला हे राजकुमार यह व्यक्ति हमारी ही तरह है पर यह अब वृद्ध हो चला, साथ ही बीमार भी है। राजकुमार बोले- तो क्या हमारी भी ऐसी दशा हो सकती है। सारथी ने कहा जन्म पश्चात् बालक, युवा, वृद्ध होना तो प्रकृति का सामान्य

नियम है, सभी प्राणवान चाहे वो चर हों अथवा अचर सभी की यही नियति है। राजकुमार सिद्धार्थ सारथी के साथ वापस महल में लौट गये अब उनके चेहरे पर सदा की तरह प्रसन्नता के स्थान पर उदासीनता झलक रही थी।

इसी प्रकार एक बार जब नगर भ्रमण कर रहे थे तो उन्हें श्मसान की ओर जाती हुई भीड़ दिखाई दी। राजकुमार ने सारथी से पूछा ये लोग कहाँ जा रहे हैं। सारथी ने बताया कि ये लोग एक मृत व्यक्ति को जलाने के लिये श्मसान घाट की ओर जा रहे हैं। राजकुमार सिद्धार्थ ने ऐसा दृश्य पहले कभी देखा नहीं था उसने आश्चर्य के साथ सारथी से पूछा कि क्या मैं भी मरूंगा? तब सारथी ने कहा कि जिसने जन्म लिया है उसकी मृत्यु निश्चित है। संसार के सभी प्राणी मरणधर्मा हैं। राजकुमार सिद्धार्थ बड़े व्याकुल हो उठे। अब सांसारिक वस्तुओं से उनका मन उचाट हो गया, उसकी यह दशा देखकर राज परिवार चिंतित हो गया। राजा शुद्धोधन को पूर्व की वह घटना याद आ गई जिसमें ज्योतिषाचार्य ने कहा था कि बालक महान तपस्वी बनेगा। दिन बीतते गये। एक बार फिर राजकुमार सिद्धार्थ सारथी के साथ नगर भ्रमण को निकले। राजकुमार ने कहा कि सारथी रथ को नगर से बाहर ले चलो मैं बड़ा व्यथित हूँ। रथ वन क्षेत्र की ओर बढ़ चला। आगे उन्हें एक आश्रम दिखाई दिया जहाँ एक सन्यासी गेरुवें वस्त्र धारण किये आँख मूंद कर ध्यान मुद्रा में बैठा था। राजकुमार को उसकी शान्त मुख-मुद्रा ने आकर्षित कर लिया। बड़ी देर तक वे सन्यासी को देखते रहे। कुछ समय पश्चात् वे राजमहल की ओर लौट चले। उन्होंने सारथी से पूछा यह कौन व्यक्ति था जिसके चेहरे पर असीम शान्ति छाई हुई थी। सारथी ने उत्तर दिया कि इस व्यक्ति ने सांसारिक जीवन छोड़ दिया तथा मोह-माया से दूर रहकर तपस्या कर रहा है ताकि मोक्ष की प्राप्ति कर सके। सिद्धार्थ भावविहीन हो गये तथा मन ही मन कुछ निश्चय करने लगे। समय बीतता गया।

एक रात सिद्धार्थ अर्द्ध रात्रि को उठे। निःशब्द द्वार की ओर बढे। एक दृष्टि अपनी सोई हुई पत्नी यशोधरा व पुत्र राहुल पर डाली तथा निर्मिमेश भाव से भागे बढ़ गये। सिद्धार्थ चले जा रहे थे। राजमहल पीछे छूट गया। वे लगातार आगे बढ़ रहे थे। कपिल वस्तु के राज मार्ग से वे वन कान्तर की ओर चल पड़े। उनके मन में आगे की यात्रा के विचार भी चल रहे थे। सारे द्वन्द्व पीछे छूट गये थे। राजकुमार सिद्धार्थ वैभव-विलास से वैराग्य की ओर बढ़े चले जा रहे थे। **(क्रमशः)**

कुत्ते कभी गाड़ी के नीचे से निकल जाएँगे, तब उन्हें पता लगेगा कि गाड़ी तो उनके बिना भी चल रही थी और भविष्य में भी चलती रहेगी। काश! उनकी गलत-फहमी की कोई बुनियाद ही हो सकती होती पर वे क्या करें? उनकी समझ ही इतनी है कि वे असम्बद्ध कार्य-करण को जोड़ने के अभ्यस्त हो चुके हैं और शायद इसीलिए कार्य का सत्य कारणों से सम्बन्ध नहीं जोड़ पाते। इसी असफलता में वे जीवन की हर ठोकर के बाद पछताते हैं और उस पश्चाताप में ऐसी ही अनेक गलतियाँ कर जाते हैं।

- पू. तनसिंहजी

गतांक से आगे

राजपूत

– युधिष्ठिर

राजपूत ही ऐसी कौम है जिसने मुसलमानों को टक्कर दी, खुली चुनौती दी इसीलिए शेरशाह शूरी ने कहा– ''मैं मुठ्ठी भर बाजरे के लिए दिल्ली की सल्तनत खो देता।'' कुछ लोग कहते हैं राजपूत तो अपने लिए लड़ा, कोई किसी देश का राजा हो और उस देश पर शत्रु आक्रमण कर दे उसके लिए लड़ा तो क्या ये अपने लिए लड़ना होता है? सिर्फ राजा ही असुरक्षित होता है तुम तो सुरक्षित हो। अगर देश सुरक्षित नहीं तो राज्य सुरक्षित नहीं। अगर राज्य सुरक्षित नहीं तो जिला सुरक्षित नहीं। अगर जिला सुरक्षित नहीं तो गाँव सुरक्षित नहीं। अगर गाँव सुरक्षित नहीं तो घर सुरक्षित नहीं। अगर घर सुरक्षित नहीं तो आप और मैं सुरक्षित नहीं। राजपूत तो कुर्सी के लिए लड़ता था, देवल चारणी की गायों के लिए पाबूजी लड़े क्या वो कुर्सी के लिए लड़े? खण्डेला के मोहनजी के मंदिर को तोड़ने आई औरंगजेब की सेना से सुजान सिंह जी छापोली कुर्सी के लिए लड़े? अलाऊद्दीन खिलजी की बेटी फिरोजा के विवाह प्रस्ताव को ठुकरा कर क्या विरमदेव कुर्सी के लिए लड़े। क्या बन्दा वैरागी (लक्ष्मणदेव) जिनको पकड़ने के मंसूबे लिए हुए ही औरंगजेब इस दुनिया से विदा हो गया, क्या वो कुर्सी के लिए लड़े थे। अपने प्रारंभिक जीवन में तो वो सन्यासी थे। कौनसी कुर्सी की लड़ाई लड़ी धनजी–भीमजी ने। कौनसी लड़ाई लड़ रहे थे शक्तावत, चुण्डावत की पहले हम मरेंगे। ऐसे ही अनेकों, सैंकड़ों उदाहरण हैं जहाँ कुर्सी का कोई प्रश्न ही नहीं था। राजसिंहजी मेड़तिया पुष्कर की गलियों में तीन दिन तक लड़ते गए सिर्फ पुष्करराज की रक्षा के लिए। पुष्कर की गली–गली में खून–खच्चर हो गया। घर चौराहा, हर तिराहा, गली–गली में लाशों के ढेर लगे हुए थे। कौनसी कुर्सी की लड़ाई थी वहाँ। कोई किसी की बहन–बेटी को उठाकर ले जा रहा है, क्या वहाँ भी राजपूत कुर्सी के लिए लड़ा। कुछ लोग कहते हैं– राजपूत तो स्वतंत्रता सेनानी नहीं थे। इनका स्वतंत्रता संग्राम में कोई योगदान नहीं था। फिर, महाराव बख्तावरसिंह अमझेरा, प्रवीणसिंह शेखावत, कल्लाजी–मासींग जी, आउवा ठाकुर कुशालसिंह, धीरसिंह शेखावत, डूंगजी जवाहरजी, गोपालसिंह खरवा आदि कौन थे। ये तो गिने–चुने नाम हैं इनके अलावा और भी बहुत से नाम हैं। इनकी कहानियों को कभी प्रकट होने ही नहीं दिया। करो राजपूतों को बदनाम। दिखाओ जितना नीचा दिखा सको इनको। बस ये ही प्रयास चल रहे हैं। राजपूत नारियाँ तो कमजोर थी इसलिए जौहर किया। ये कौन थी फिर, राजबाला, हाड़ी रानी, महारानी दुर्गावती, जैसलमेर की राजकुमारी रत्नावती, बीकानेर की विरांगना किरण देवी, सोलंकी रानी नायिकी देवी आदि। स्कूलों में झाँसी की रानी के बारे में पढ़ाया जाता है, पढ़ाना भी चाहिए। स्त्री सम्मान, वीरता–धीरता प्रकट होना चाहिए पर राजपूत नारियों के बारे में क्यों नहीं पढ़ाया जाता। सिर्फ इसलिए क्योंकि वो राजपूत हैं। जिन्हें मौत का भय होता है वे पीछे हटते हैं, जिन्हें मौत का कोई भय ही नहीं उनका क्या बिगाड़ लोगे। सती सत्यवती व सती अनुसुईया की पौराणिक कथाएँ हैं। जिन्हें सम्मान से देखा जाता है और पूजा जाता है। सती सत्यवती यमराज से अपने पति को वापस ले आई थी और सती अनुसुईया का ऐसा तप था उन्होंने ब्रह्मा, विष्णु, महेश को बालक बना दिया उसी सती परम्परा को राजपूतों ने निभाया। इनको इतना सम्मान और राजपूतों को तुम कहते हो सती जैसी कुप्रथा के जनक थे। अपने पति के अतिरिक्त किसी पराये मर्द का चिंतन भी नहीं करे, अपने पति को ही परमेश्वर माने, अपने पति के बिना जीवन जीना भी उन्हें गँवारा नहीं, यह तप है। ये

भारत के संस्कार हैं। इसी संस्कार परम्परा में राजपूतों में भी सतियाँ हुई हैं जिन्हें एक घिनौना रूप देकर कहा गया कि राजपूत तो सती जैसी कुप्रथा के जनक हैं। आठ सौ सालों तक राजपूत राजवंशों से लेकर आम राजपूतों ने इस्लाम को इस धरती पर आने ही नहीं दिया। राजपूतानियाँ खुद आगे बढ़कर अपने पति, बेटों को युद्ध में तिलक लगाकर भेजती थी। यू.पी. जैसे बड़े राज्य में राजपूत मात्र आठ प्रतिशत हैं। किसी-किसी राज्य में तो जड़ ही गायब हो गई। इतना सब कुछ होने के बाद भी ऐसा कभी नहीं हुआ जब इस्लाम के खिलाफ युद्ध में राजपूतों ने किसी दूसरी जाति को मरने के लिए आगे भेज दिया। राजपूत अपने नाबालिग बेटे कुर्बान करते रहे जिसकी वजह से आज की हिन्दू पीढ़ी मुसलमान होने से बची रह गई। 800 सालों में भी मुसलमान भारत को इस्लामिक देश नहीं बना पाये। जब मुस्लिम तलवारें रक्त माँगती थी तब पहला सिर इन राजपूतानी माँओं ने अपने पति और बेटों के दिये हैं। अगर राजपूत नहीं होते तो आज का हिंदु, हिंदु होता ही नहीं किसी मस्जिद में नमाज पढ़ रहे होते। जिनके दादा, परदादा राजपूती तलवार के छत्रछाया में न केवल जिंदा रहे बल्कि अपने धर्म को बचाये रखने में कामयाब रहे आज उन्हीं की संतानें राजपूतों को गालियाँ देती हैं, लांछन लगाती है, ईर्ष्या करती हैं, कई तरह के मंतव्य गढ़कर नीचा दिखाने का प्रयास करती हैं। हिंदुत्व की रक्षा में इस कौम ने अपनी संतानों की बलि चढ़ा दी। राजपूतों के शब्दकोश में आज भी डर शब्द नहीं है। राजपूतों ने रक्त से सींचा है भारत को। रक्त से अभिषेक किया है इस पुण्य भूमि का।

राजपूत थे तो जौहर क्यों हुआ? इसकी वजह है शास्त्र। मुट्ठी भर राजपूत और सामने लाखों का लश्कर। राजपूतों के पास तलवार और भाले और सामने तोपें और बंदूकें। राजपूत किसी दूसरी जाति को खतरे में डाल नहीं सकते थे। राजपूत के लिए शाका जरूरी होता था, नहीं तो कहा जाता था किले का ब्याह हुआ ही नहीं, कंवारा ही रह जाएगा। युद्ध से पलायन अपनी परम्परा को बदलना होता था इसलिए कभी युद्ध से पलायन किया ही नहीं। स्वाभिमानी समर्पण नहीं करते वरन् मृत्यु का वरण करते हैं। मृत्यु अवश्यंभावी थी। राजपूत का शरीर तो इंसानों जैसा ही होता है, मनोबल लोहे का होता है, कलेजा वज्र का होता है। शाका निर्णायक युद्ध होता था। जितना हो सके उतने शत्रु को मार दो। रक्त अधिक गिरने से मृत्यु तो हो सकती है। शत्रु टिड्डी दल की तरह होता था। लाखों के लश्कर के सामने एक प्रहर भी टिकना मुश्किल होता था, राजपूत कई दिनों तक युद्ध करते थे। लेकिन कभी भी आने वाली अपनी संतानों को यह कहने का मौका नहीं दिया, तुम युद्ध से भाग के आ गये, तुमने शत्रु के सामने घुटने टेक दिए। इसी परम्परा में जौहर होता था जहाँ शत्रु के मंसूबों पर पानी फेर दिया जाता था, जहाँ विजय होती थी स्वधर्म की, स्वाभिमान की, गौरव की, परम्परा की और राजपूती आन, बान और शान की। इसी वजह से राजपूत थे और जौहर हुआ। राजपूत और क्षत्रिय में क्या भेद है? राजपूत जब साधनापरक हो जाता है, जब उसमें गीता के श्लोक ''शौर्यं तेजो.....'' के सभी गुण प्रस्फुटित हो जाते हैं तो वही राजपूत क्षत्रिय हो जाते हैं। राजपूत और क्षत्रिय कोई अलग-अलग जाति नहीं। ऐसे गुण महाराणा प्रताप, दुर्गादास राठौड़, राणा सांगा, राणा हमीर, बप्पा रावल आदि राजपूतों में थे इसलिए इन्हें क्षत्रिय कहा जाता है। लेकिन यह गिनती यहाँ समाप्त हो गई ऐसा नहीं है। पूरा इतिहास ऐसे ही अनगिनत उदाहरणों से भरा हुआ है।

यह बात तो हो गई कि राजपूतों के खिलाफ सोचा-समझा षड़यंत्र हो रहा है और करने वाले राजनैतिक नेता भी हैं पर अब करने की क्या जरूरत है। जो करने की जरूरत है वह राजपूत को ही है। सही इतिहास की जानकारी इकठ्ठा करना और लोगों को बताना। हर राजपूत को अपने इतिहास की पूरी और सही जानकारी होनी चाहिए। इसके लिए क्षत्रिय युवक संघ में आना चाहिए।

खुद को भी आना चाहिए और अपने बच्चों और बच्चियों को भी भेजना चाहिए। सही जानकारी होगी तो हम इतिहास को कलंकित और भ्रमित करने वालों का विरोध कर सकते हैं। विरोध करने से ये होगा कि इनको कामयाबी नहीं मिलेगी। इनको लगेगा यह जाति सोई नहीं है अभी जगी हुई है। इससे दंगे, झगड़े, देश को अंतर कलह से बचाया जा सकता है। देश में कर्फ्यू के हालात नहीं बनेंगे, जन-जीवन को सुरक्षित रखा जा सकता है। हम सब सुरक्षित रहेंगे। हमारी आने वाली पीढ़ी सुरक्षित रहेगी। हर जाति के लोग सुरक्षित रहेंगे। इस तरह हम देश को बचा लेंगे। वो हालात कभी आयेंगे ही नहीं। राजपूत को समझना चाहिर ये राजपूत को अपनी ही सोच से यानी राजपूत की सोच में जहर घोलकर मारना चाहते हैं। और इन सबसे बचने का एक ही उपाय है इतिहास की सही जानकारी इकट्ठा करो, अपने दोस्तों, परिवार वालों, बच्चे-बच्चियों को बताओ और उन्हें भी आगे बताने के लिए कहो। ये सब चाह कर भी सतोगुण को पूरी तरह मिटा नहीं सकते क्योंकि यह ईश्वरीय सिस्टम है पर हमें हमारा काम करते रहना चाहिए।

अगर राजपूत सोचे आज कौनसा युद्ध करना है; आज कौनसी तलवार और भालों से लड़ना है। तो समझ लो आज भी वही युद्ध की स्थिति बनी हुई है, आज भी वही युद्ध चल रहा है जो महाराणा प्रताप व हमारे अन्य पूर्वजों के समय चले थे। आज भी हमारे ऊपर सांस्कृतिक हमले हो रहे हैं। पहले मंदिर तोड़े जाते थे आज हमारा इतिहास तोड़ा जा रहा है। पहले मुसलमानों से युद्ध होता था, अब हिन्दू, राजपूतों के अतिरिक्त सभी हिन्दू जातियाँ ने जिनके पुर्खों की हमारे पुरखों ने न सिर्फ जान बचाई, उन्हें मुस्लिम भी नहीं बनने दिया, हमारे यानी राजपूतों के खिलाफ जंग छेड़ रखी है। हमारा इतिहास सिर्फ हमारे लिए जरूरी नहीं हैं, जो हिन्दू हमारे इतिहास को तोड़ना चाहते हैं उनमें से एक भी व्यक्ति सुरक्षित नहीं रहेगा। उन्हें या तो मार दिया जायेगा या जबरन मुसलमान बना दिया जाएगा। इसलिए क्षत्रिय यानी राजपूत और राजपूत यानी क्षत्रिय माचों की मौत नहीं मर सकता। अतः अगर आप राजपूत हो, महाराणा प्रताप की संतान हो तो इस वर्तमान में हो रहे युद्ध में सहयोगी बनें। यह युद्ध हमें कागज, कलम, इतिहास के अध्ययन-प्रसारण, जब-जब हमारे इतिहास को तोड़ा जाए उसके विरोध से करना है। हम ये सब पूरी सज्जनता से, हमारी पुर्खों की निभाई हुई परम्परा के अनुसार करेंगे। आज भी अकबर जिंदा है, मुसलमान और राजपूत विरोधी हिन्दुओं के रूप में, आप महाराणा प्रताप बनेंगे या नहीं; उसी बहलोल खान को टोप, बख्तर, घोड़े समेत दो टुकड़ों में चीरने के लिए। कलम का कलेजा भी जिनका इतिहास लिखते-लिखते काँपने लगा। कितना खौफनाक मंजर, कितनी भयावह स्थिति, मौत से जिंदगी छीन लाये।

अब विशेष बात। आज का राजनेता भयभीत व असुरक्षित है। वह जनता के हृदय में वैसा स्थान नहीं प्राप्त कर पा रहा है जैसा स्थान हमारे पूर्वजों ने प्राप्त किया है। उसे सत्ता हाथ से छिटकने का भय है। इसलिए वह हमसे और हमारे पूर्वजों से द्वेष करता है। वह हमें आवेश में लाना चाहता है जिससे कि वह अपने दुष्प्रचार में कामयाब हो सके। हमें आवेश में नहीं आना है। इनकी असुरक्षा और भय का सबसे बड़ा कारण है हमें संगठित शक्ति के रूप में देखना। और यही इनकी पराजय है। हमें न सिर्फ संगठित होना पड़ेगा बल्कि उसी मंच से इनके झूठ का पर्दाफाश करना पड़ेगा। इतना ही नहीं जिन पूर्वजों के गुणों का हम वर्तमान में गुणगान करते हैं, उन्हीं गुणों को हमें वर्तमान में भी जीवित रखना पड़ेगा, हमें जनमानस के हृदय में पूर्वजों की भाँति ही जगह प्राप्त करनी होगी, जिससे न सिर्फ हमारे भविष्य का निर्माण होगा, बल्कि हम भविष्य में एक संगठित शक्ति के रूप में उभरेंगे। और इसके लिए सबसे श्रेष्ठ रास्ता है- **''श्री क्षत्रिय युवक संघ।''**

●

सेवा

– गजेन्द्रसिंह आऊ

मानव जीवन की उपयोगिता इसी में है कि वह दूसरे प्राणियों की सेवा करे। सेवा धर्म ही सबसे बड़ा धर्म है।

सेवा वही श्रेष्ठ बन पाती है जो सेवा करने वाले के स्वभाव व हूनर (कार्य कुशलता) के अनुकूल हो। स्वभाव जन्मजात होता है वह माता-पिता से बालक में आता है तथा हूनर अर्थात् कार्य कुशलता बालक संसार में स्वयं अर्जित कर सकता है।

सामान्यतया सेवा तो सभी लोग करते हैं जैसे माता-पिता, सास-ससुर, पति-पत्नी, संतान व परिवार के अन्य सदस्यों की। जो मनुष्य इनकी सेवा में हर समय तत्पर रहता है वह मानवता का साधारण सेवक है। जब सेवक इनके साथ-साथ जाति, समाज तथा प्राणी मात्र की सेवा में भी पूर्ण मनोयोग से लग जाता है तो वह उच्च कोटि की सेवा बन जाती है। इस सेवा को करने के लिए हमारे पास जो भी योग्यता है, उसका सद् उपयोग करते हुए सेवा करनी चाहिये। जैसे कोई विद्या सम्पन्न है तो विद्या से, बलवान है तो रक्षण करके, धनवान है तो अर्थ से, कलाकार है तो अपनी कला से, कर्मचारी है तो अपने उत्तरदाहित्व से, नेता है वो प्रजा को पुत्रवत मानकर नेतृत्व से सेवा करे।

आधुनिक समय में वर्ण-व्यवस्था छिन्न-भिन्न होने से मनुष्यों को अपने स्वभाव तथा हूनर के अनुकूल सेवा का मौका नहीं मिल पा रहा है। अच्छी व श्रेष्ठ सेवा तो वही बन पाती है जो व्यक्ति के स्वभाव के अनुकूल हो ।

इसी प्रकार गुरु, नेता व ईष्ट की सेवा है उसके अनुभूत और बताये हुए मार्ग पर चलकर इन्हें प्रसन्न करना व स्वयं को कृतार्थ करना। जो गुरु, नेता व ईष्ट के उपदेश को सुनता है, उन्हें झुक-झुक कर वन्दन भी करता है उनकी जय-जयकार से आकाश भी गुंजायमान कर देता है उनके स्वागत एवं विदाई पर कई प्रकार के आयोजन भी करता है, ईष्ट के अवतरण दिवस पर खूब खर्च भी करता है, अपने आप को लोगों के सामने भाग्यशाली भी बताता है परन्तु उनके द्वारा बताये मार्ग पर, नियमों पर, आज्ञाओं पर एक कदम भी नहीं चलता, वह व्यक्ति उनका सेवक नहीं बल्कि पाखण्डी है। वह नेता, गुरु व ईष्ट को बदनाम करने का साधन मात्र है।

अतः यदि हम किसी की सेवा करने का उपक्रम करते हैं तो वह सच्ची हो, ढोंग नहीं बननी चाहिये। ईष्ट का हम रात-दिन गुणगान तो करें परन्तु उसके चले हुए मार्ग पर एक कदम भी न चलें तो इष्ट उस पर कभी कृपा नहीं करेंगे।

श्री क्षत्रिय युवक संघ में भी असली स्वयंसेवक वही है जो पूज्य तनसिंह जी द्वारा चलाये गये मार्ग पर निःस्वार्थ भाव से चलता है। उनके द्वारा बताये गये नियमों का पालन करता है।

हम संघप्रमुख श्री के स्वागत में फूलों की बारिश करें, उन्हें स्वादिष्ट भोजन करावें, मंहगी गाड़ियों में बिठाएं, गृह-प्रवेश, सवामणियों में बुलाएं इस सबसे उनकी सेवा नहीं होगी। सेवा होगी उनके द्वारा बताये गये सांघिक कार्यों को करने से।

जो सेवा अपने प्रति व अपनों के प्रति की जाये वह सेवा नहीं, उत्तरदायित्व वहन करना है। हाँ, वही सेवा अपने को व अपनों को सक्षम बनाकर समाज, राष्ट्र व मानवता की सेवा के योग्य बनाती है तो वही उत्तरदायित्व सेवा बन जाती है। इसी प्रकार अपनी जाति का हित करना एक उत्तरदायित्व है क्योंकि जाति ने हमे हमारी पहचान प्रदान की है। लेकिन जाति में यदि हमें इस प्रकार से कार्य करें कि वही जाति सक्षम बनकर समाज व मानवता के हित में अपना त्याग और बलिदान करने को तैयार हो जाए तो वह सर्वश्रेष्ठ सेवा बन जायेगी। यही कार्य श्री क्षत्रिय युवक संघ पिछले 78 वर्ष से करने की प्रेरणा देने में लगा हुआ है। ●

जीवन में श्री क्षत्रिय युवक संघ का मार्ग आवश्यक क्यों है?

– जितेन्द्र सिंह देवली

क्षत्रिय युवक संघ का मार्ग :
प्रेम, अनुशासन और आत्म–शुद्धि का पथ

क्षत्रिय युवक संघ (श्री क्षत्रिय युवक संघ) एक ऐसा संगठन है जो केवल बाहरी संरचनाओं या सिद्धान्तों पर निर्भर नहीं है, बल्कि यह प्रेम, अनुशासन और आत्म–शुद्धि का मार्ग सिखाने वाली जीवन पद्धति है। संघ का उद्देश्य है युवाओं में नैतिक और आध्यात्मिक मूल्यों का जागरण करना, जिससे वे अपने जीवन में श्रेष्ठता की ओर अग्रसर हों। इसके माध्यम से आत्मा की शुद्धि और आत्म–साक्षात्कार का मार्ग दिखाया जाता है। संघ का यह मार्ग प्रेम की उस अग्नि पर आधारित है, जो व्यक्ति के अंतरमन में परिवर्तन लाती है। मैं अपनी समझ से कुछ बिन्दु इस सम्बन्ध में प्रस्तुत कर रहा हूँ –

- **आत्मा की शुद्धि :–** क्षत्रिय युवक संघ की हर गतिविधि का लक्ष्य है आत्मा की शुद्धि। प्रेम की अग्नि के माध्यम से, जो आत्मा को पवित्र कर देती है, संगठन के शिविर और शाखाएँ इस पवित्रता का प्रचार करती हैं। बाहरी दुनिया की वस्तुएँ जैसे भौतिक संपत्ति, सिर्फ क्षणिक सुख देती हैं, लेकिन संघ का मार्ग आत्मिक विकास पर जोर देता है।
- **मस्तिष्क से हृदय तक यात्रा :–** आज की दुनिया में व्यक्ति तर्क और बुद्धि पर आधारित हो गया है, जबकि संघ सिखाता है कि सच्ची शक्ति हृदय से आती है। मस्तिष्क तर्क देता है, लेकिन प्रेम हृदय से उत्पन्न होता है, और जब तक हृदय में प्रेम नहीं आता, तब तक जीवन में सच्चा आनंद नहीं मिल सकता।
- **अनुशासन की शिक्षा :–** संघ अपने अनुशासनात्मक शिविरों के माध्यम से युवाओं को सिखाता है कि जीवन में आत्म–नियंत्रण और अनुशासन कितना महत्त्वपूर्ण है। यह अनुशासन आत्मशुद्धि की दिशा में एक महत्त्वपूर्ण कदम होता है।
- **जीवन के सही मार्ग की पहचान :–** आज के युवाओं में भ्रम और असंतुलन व्याप्त है। बाहरी दुनिया के आकर्षणों से विचलित होकर, वे सही मार्ग से भटक जाते हैं। संघ उन्हें इस भ्रम से मुक्त करके, जीवन के सही मार्ग की पहचान कराता है।
- **समाज सेवा और निःस्वार्थ सेवा :–** संघ सिखाता है कि समाज के प्रति अपनी जिम्मेदारी को समझें। अपने समाज की सेवा करते हुए व्यक्तिगत आत्म–संवर्धन भी करें। संगठन में नियमित रूप से आयोजित शिविरों और शाखाओं के माध्यम से समाज सेवा और निःस्वार्थ सेवा का मार्ग दिखाया जाता है।
- **सत्य के प्रति समर्पण :–** क्षत्रिय युवक संघ सत्य के प्रति समर्पण का पाठ पढ़ाता है। जीवन में ईमानदारी और सत्यता के महत्त्व को समझाकर युवाओं को नैतिक मूल्यों से सुसज्जित किया जाता है।
- **साहस और वीरता का विकास :–** संघ युवाओं को साहसी बनने की प्रेरणा देता है। क्षत्रिय परंपरा से जुड़े हुए वीरता के गुणों का विकास और आत्म–रक्षा के सिद्धांतों की शिक्षा संघ का महत्त्वपूर्ण हिस्सा है।
- **बाहरी आकर्षणों से मुक्ति :–** आज की दुनिया में विज्ञापन और ब्रांड्स युवाओं को भटकाते हैं। संघ सिखाता है कि बाहरी आकर्षणों से मुक्ति पाकर, अपने अंदर की शक्ति और आत्मा पर विश्वास करें।
- **परंपरा और संस्कृति का संरक्षण :–** संघ न केवल व्यक्तिगत विकास पर ध्यान देता है. बल्कि यह भारतीय संस्कृति और परंपराओं का संरक्षण भी करता

है। युवाओं को अपने इतिहास और संस्कृति के गौरवमयी क्षणों से परिचित कराया जाता है।

- **आत्मनिर्भरता की शिक्षा** :- संघ में आत्मनिर्भरता को प्राथमिकता दी जाती है। यह सिखाता है कि व्यक्ति को अपने प्रयासों पर विश्वास होना चाहिए और किसी भी बाहरी सहायता पर निर्भर नहीं होना चाहिए।
- **नैतिक मूल्यों की शिक्षा** :- संघ नैतिक मूल्यों का एक प्रमुख स्रोत है। यह युवाओं को सिखाता है कि जीवन में नैतिकता का कितना महत्त्व है और कैसे नैतिक मूल्यों के आधार पर जीवन जीया जा सकता है।
- **मानसिक शांति और योगाभ्यास** :- संघ योगाभ्यास और ध्यान के माध्यम से मानसिक शांति प्राप्त करने की शिक्षा देता है। शारीरिक स्वास्थ्य के साथ-साथ मानसिक स्वास्थ्य को भी महत्त्व दिया जाता है।
- **परिवार और समाज के प्रति जिम्मेदारी :-** संघ सिखाता है कि व्यक्ति की जिम्मेदारी सिर्फ खुद तक सीमित नहीं है. बल्कि उसके परिवार और समाज के प्रति भी है। सही नेतृत्व, क्षमता और जिम्मेदारी की भावना का विकास संघ के शिक्षण में होता है।
- **नेतृत्व क्षमता का विकास** :- संघ युवाओं को न केवल अनुयायी बनने की शिक्षा देता है. बल्कि उन्हें नेतृत्वकर्ता बनने की भी प्रेरणा देता है। संगठनात्मक नेतृत्व और समूह संचालन के गुणों का विकास संघ की शाखाओं में सिखाया जाता है।
- **युवाओं में आत्मविश्वास का विकास** :- संघ युवाओं में आत्मविश्वास का निर्माण करता है। उन्हें सिखाता है कि अपने अंदर की क्षमता को पहचानें और उसका उपयोग समाज और राष्ट्र के कल्याण के लिए करें।
- **सही मानसिकता का निर्माण** :- संघ सही मानसिकता का निर्माण करता है. जिसमें व्यक्ति अपने जीवन के उद्देश्यों को पहचानता है और अपनी आंतरिक शक्ति के प्रति जागरूक होता है।
- **प्रेम के प्रति समर्पण** :- संघ सिखाता है कि प्रेम ही सबसे बड़ी शक्ति है। व्यक्ति को अपने अंदर प्रेम की भावना जागृत करनी चाहिए, क्योंकि प्रेम के बिना आत्मा की शुद्धि संभव नहीं।
- **तर्क के बजाय अनुभव पर जोर** :- संघ तर्क से अधिक अनुभव पर जोर देता है। तर्क एक सीमा तक ही मदद करता है. लेकिन अनुभव व्यक्ति को वास्तविक ज्ञान की ओर ले जाता है।
- **राष्ट्र और समाज की सेवा** :- संघ का एक प्रमुख उद्देश्य है युवाओं को राष्ट्र और समाज के प्रति सेवा की भावना से प्रेरित करना। यह संगठन केवल व्यक्तिगत विकास पर केंद्रित नहीं है, बल्कि समाज और राष्ट्र के उत्थान का भी मार्ग प्रशस्त करता है।
- **जीवन के हर क्षेत्र में संतुलन** :- संघ सिखाता है कि जीवन के हर क्षेत्र में संतुलन बनाना आवश्यक है। चाहे वह व्यक्तिगत हो, पारिवारिक हो, सामाजिक हो या आध्यात्मिक, संतुलन बनाए रखना ही श्रेष्ठता की ओर बढ़ने का रास्ता है।
- **स्मरणीय** :- संघ का मार्ग प्रेम, अनुशासन, और आत्म-शुद्धि का मार्ग है, जो जीवन को नई दिशा देता है। यह व्यक्ति के आंतरिक विकास और समाज की भलाई के लिए काम करता है।

हमें अपना रास्ता अपने जीवन की कुदाली की एक-एक चोट से
रात-दिन बनाना पड़ेगा और उसी पर चलना भी पड़ेगा।

– सरदार पूर्णसिंह

मैं शरीर नहीं हूँ

– रश्मि रामदेरिया

''सर्गेऽपि नोपजायन्ते प्रलये न व्यथन्ति च'' (गीता जी) शरीर के रहने अथवा न रहने से हमारी सत्ता में कोई फर्क नहीं पड़ता। वास्तव में हम अपनी वास्तविक इच्छा को शरीर अथावा संसार की सहायता से पूरी कर ही नहीं सकते। साधक को आरम्भ से ही इस सत्य को स्वीकार कर लेना चाहिये।

''मैं चिन्मय सत्तारूप हूँ, मैं शरीर रूप नहीं हूँ।''

जो नहीं बदलता, वही हमारा स्वरूप है।

हमारी सत्ता (होनापन) शरीर के अधीन नहीं है। स्वरूप एक शरीर में सीमित नहीं है, प्रत्युत सर्वव्यापी है। आत्मा पहले है और शरीर पीछे है। हमारा जीवन इस शरीर के अधीन नहीं है। हमारी आयु बहुत लम्बी-अनादि और अनन्त है। शरीर के न रहने पर हमारा कुछ भी नहीं बिगड़ता। हमारा होनापन शरीर, इन्द्रियाँ, मन, बुद्धि और अहंकार के अधीन नहीं है। शरीर को अपने से अधिक महत्त्व देना अर्थात् शरीर को अपना स्वरूप मानना मूल दोष है जिससे सम्पूर्ण दोषों की उत्पत्ति होती है। स्थूल शरीर से होने वाली क्रिया, सूक्ष्म शरीर से होने वाला चिन्तन और कारण शरीर से होने वाली स्थिरता तथा समाधि भी अपनी नहीं है।

''प्रेम की सरिता नीचे, तपस्या की धूप ऊपर,
भावना के झंकोरों में, रहती है सदा हरी।।
जीवन के अन्तस्थल में खिली है फुलवारी
जागी भँवरों की बाणी कल्याणी हितकारी''

इसलिए मनुष्य में जो सत्-चित-आनन्द की इच्छा है, उसकी पूर्ति शरीर से असंग (सम्बन्ध-रहित) होने पर ही हो सकती है। यही सिद्धान्त है कि जो वस्तु मिलती है और बिछुड़ जाती है, वह अपनी नहीं होती। जो वास्तव में अपना है, उस परमात्मा को तो भुला दिया और जो अपना नहीं है, उस शरीर को अपना मान लिया- यह हमारी बहुत बड़ी मूल है।

"when you come from your truth and your heart's desire, you will have real happiness"

न तो यह शरीर तुम्हारा है और न ही तुम इस शरीर के हो। यह शरीर पाँच तत्वों से बना है- अग्नि, जल, वायु, पृथ्वी और आकाश। एक दिन यह शरीर इन्हीं पाँच तत्वों में विलीन हो जाएगा। -गीता

वेद पुराण और गीता अनुसार आत्मा अजर-अमर है। आत्मा एक शरीर धारण कर जन्म और मृत्यु के बीच नए जीवन का उपभोगू करती है जौर पुनः शरीर के जीर्ण होने पर शरीर छोड़कर चली जाती है।

जो व्यक्ति शरीर को ही आत्मा समझ बैठता है उसे काम, क्रोध, राग, द्वेष, जन्म-मृत्यु के हर्ष, शोक आदि अवश्य होते हैं। परन्तु जो व्यक्ति देह से आत्मा की भिन्नता का अनुभव कर लेता है, उसे इन बातों का अनुभव नहीं होता। हमारे अध्यात्म के चार भाग-शरीर, मन, बुद्धि और आत्मा हैं। इनमें शरीर मन-बुद्धि को कर्म तथा आत्मा को ज्ञान कहा है। श्रीकृष्ण प्रभु गीता जी में शरीर को क्षेत्र कहते हैं तथा आत्मा को क्षेत्रज्ञ कहते हैं-

''इदं शरीरं कौन्तेय क्षेत्रमित्यमिधीयते।
एतद्यो वेत्ति तं प्राहुः क्षेत्रज्ञ इति तद्विदः।।''

हे अर्जुन! जैसे कृषक क्षेत्र में सब प्रकार के अन्न, शाक आदि उत्पन्न करते हैं, उसी प्रकार जीवात्मा इस शरीर के द्वारा ही सब प्रकार के अच्छे-बुरे कर्म करता है और आगे स्वयं उनका फल भोगता रहता है। बालक-बालिकाओं के क्षत्रिय युवक संघ के कैंप में पूरी दिनचर्या व क्रियाप्रणाली श्री गीताजी के श्लोकों के माध्यम से ही बनायी गई है। हमें कर्मयोग का पाठ पढ़ाया जाता है। हमारे क्षात्र-धर्म को ध्यान

में रखते हुए स्वयं का सुधार व स्वचिंतन ही हमारा लक्ष्य है। आत्मचिंतन करते रहें स्वयं को पहचाने और समाज के लिए हर प्रकार से कार्यरत रहें।

''अग्नि परीक्षा में जब होगा जलकर के तू राख।
कई चढ़ायेंगे मस्तक पर होगा दामन पाक।।
नमो साधना धन्य है निष्ठा दृढ़ता तुझे प्रणाम।
पीड़ा को पीले तो नित लें, उठकर तेरा नाम।।
मेरे साथी तू सोच जरा, मत उपहास करा।
चढ़ा कसौटी पर चढ़ रहना उतरे तो उतर खरा।।''

जीवन का पहला और अंतिम लक्ष्य है, खुद को जानना। आत्मज्ञान के बिना शान्ति सम्भव नहीं है। स्वरूप को जानना ही अपने आपकी सच्ची पहचान है।

आत्मा का यह जीवन चक्र तब तक चलता रहता है जब तक कि वह मुक्त नहीं हो जाती या उसे मोक्ष नहीं मिलता। प्रत्येक व्यक्ति, पशु, पक्षी, जीव-जन्तु आदि सभी आत्मा है। खुद को यह समझना कि मैं शरीर नहीं आत्मा हूँ, यह आत्मज्ञान के मार्ग पर रखा गया पहला कदम है।

''निराशा में चित का रहा ना सहारा;
माया को खूब जुटाई,
चैन गया सो न लौटा कभी भी;
झूठी पड़ी रे कमाई,
मिसरी से मीठी थी यादें पुरानी,
हो गई है मेरी मजार रे।
उसके परस बिन मनवा है सूना
जीवन में कैसी बहार रे।।''

हम शरीर भी नहीं हैं और शरीरी (शरीर वाले) भी नहीं हैं। शरीर से अलग होने से ही हम एक शरीर को छोड़ते हैं और दूसरे शरीर को धारण करते हैं। हम साक्षात् परमात्मा के अंश है-यह एकदम सच्ची, पक्की और सिद्धान्त की बात है। अनन्त ब्रह्माण्डों में एक भी वस्तु अपनी नहीं है, यहाँ तक कि ये शरीर-इन्द्रियाँ-मन-बुद्धि भी अपने नहीं हैं- यह जानना है, और केवल भगवान (प्रभु) ही अपने हैं। हे नाथ मैं आपको भूलूं नहीं- यह मानना है। **''वासुदेवः सर्वम्'' - ''जय संघ शक्ति''**

पृष्ठ 7 का शेष

''जो कुछ देखा, समझा व अनुभव किया''

दोष को बताने से और उसका प्रचार करने से दोष बढ़ता है किन्तु साथ ही साथ यह भी देखा कि दोष को वैसे ही क्षमा कर दिया जाये तब भी वह कम नहीं होता। उसके कुछ मूलभूत परिणाम होते हैं, वे तो भुगतने ही पड़ते हैं। नवनिर्माण में ऐसी कोई कमजोरी होगी तो पूरी मेहनत में दरार तो रह ही जायेगी। इसलिये हर दोष का निराकरण होना चाहिए पर किया क्या जाये? अपने साथी और मित्र को इस प्रकार जलील करना तो हमारे चरित्र की निर्बलता है, इस अद्भुत सहनशीलता को अन्ततोगत्वा मैंने भूल ही समझा और उसके निराकरण का भी अद्भुत उपाय खोज निकाला। उपाय यह था कि यदि कोई व्यक्ति धीमे चलता है तो तेज चलने वाले को गति धीमी कर इस प्रकार प्रदर्शित करना चाहिये कि हमारी गति ही ऐसी है। कई वर्षों तक यह क्रम भी रहा। हमने आदर्श को यथा रूप में स्वीकार किया और अपनी श्रेष्ठताओं का उत्सर्ग कर दिया। कलियों ने गिरना इसलिए शुरू कर दिया कि टहनियाँ फलों से लद जाये। कलियों का गिरना, दोषपूर्ण नहीं प्रत्युत उत्सर्ग सूचक है। इस नये दर्शन को भी व्यवहार में लाया गया। दोषों की अपेक्षा गुणों का चिन्तन किया गया। सागर की गहराई नापने के लिए लोहे के लंगर नहीं, नमक की गुड़िया काम में ली गई और परिणाम हुआ हम घुल-मिलकर सागर के क्षीर में एक भाव रस हो गये।

(क्रमशः)

धर्म पथ

– लोकेन्द्र सिंह

क्षात्र धर्म पथ चलकर, आओ मिल हम आह्वान करें।
स्नेह, शौर्य, संस्कार, समता का, पुनः समाज निर्माण करें।
क्या खोया, क्या पाया हमने इसकी अब ना कोई गणना हो।
इसी काल चक्र में फिर इतिहासों के पन्ने भर दें, ऐसा फिर अब अपना लेखन हो।।

हे क्षत्रिय! उठ देख विजय रथ है खड़ा सामने,
हाथ खुला उस निर्बल का, जा जरा उसे तू थाम ले।

जो जाग गया वो जाग गया, जो सोया, वो अब भी सोया है।
बिना कर्म किए इस जग में, क्या किसी ने कुछ पाया है।
विजय पताका हाथ जिसके, उसकी ही यहाँ जय जयकार हुई।
बातें तो बस छलावा है कुछ करके दिखला तो कुछ बात हुई।
माना मिलेंगे निज स्वार्थ लिए, कुछ अपने कुछ पराए भी,
कुछ सच्चे, कुछ झूठे, कुछ झूठे, सच्चे से ठहराए भी।
चलना तेरा निज धर्म हुआ तो, पथिक निश्चित मंजिल पाएगा,
अश्वमेध के अश्व सा तू विजय ध्वज फहराएगा।
शत्रु स्वयं मैं बनकर बैठा तेरे भीतर, आओ मिलकर हम प्रहार करें।
मद, मोह, लोभ और वासना का, पुनः हम निर्वाण करें।
क्या कर्म क्या धर्म हो अपना, बस इसकी अब मंत्रणा हो।
इतिहास के पृष्ठों में तेरे मेरे नवयुग का अब अंकन हो।।

मनुष्य के आचार व्यवहार का पथ प्रदर्शन करने वाली प्रवृत्तियाँ एवं प्रबल विश्वास धार्मिक विश्वासों पर क्रिया करने वाली विज्ञान की शक्तियों का परिणाम है। हमारे पूर्वजों द्वारा अपने समय के तर्क एवं अनुभवों के आधार पर परिश्रम से बनाए गये और उचित मानवीय आचार व्यवहार के लिए पवित्र अनुमोदन के साथ अगली पीढ़ी को सौंपे गए सिद्धान्तों की स्वीकृति का नाम धर्म है।

– पट्टाभि सीतारमैया

बुन्देलखण्ड के लोक देवताः लाला हरदौल जू

– नरेन्द्र सिंह परिहार

बुन्देलखण्ड क्षेत्र में दीवान हरदौल जू एक लोक देवता के रूप में पूजे जाते हैं। ग्राम-ग्राम और नगर-नगर में इनके मन्दिर और चबूतरे बने हुए हैं। विवाह आदि मांगलिक पर्व निर्विघ्न सम्पन्न हो इसके लिए इनसे मन्नत मानी जाती है।

संक्षिप्त जीवनी :– ओरछा के यशस्वी महाराजा वीर सिंह देव के कनिष्ठ पुत्र हरदौल लाल का जन्म वि.सं. 1664 सावन शुक्ला एकम सोमवार को हुआ था। यह बाल्यकाल से ही तेजस्वी, आध्यात्मिक व स्वाभिमानी थे। ईश्वर ने उन्हें सुन्दर-दर्शनीय बनाया था, लम्बे छरहरे एवं गठीले शरीर के बलिष्ठ युवक थे। वीर सिंह देव इन्हें ओरछा का भावी राजा कहते थे किन्तु वीरसिंह देव की मृत्यु वि.सं. 1688 के बाद परम्परानुसार लाला हरदौल ने बड़े भ्राता जुझार सिंह को ओरछा का राजा बनाने का प्रस्ताव रखा। मंत्री परिषद ने प्रस्ताव स्वीकार कर जुझार सिंह को राजा घोषित किया और लाला हरदोल जू राज दीवान बनाये गये थे।

भारत का राजनैतिक परिदृश्य :– भारत में उस समय विदेशी मुगलों का परचम फहरा रहा था, उनके अत्याचार चरम पर थे, धर्मान्तरण द्वारा भारतवासियों को हिन्दू से जबरन मुसलमान बनाया जा रहा था। बादशाह शाहजहां के दरबार में बहुत से राजा धरती-राज्य सुख के लिए मनसबदार बन चुके थे। जिसने भी स्वतंत्रता का प्रयास किया उसे मिटा दिया जाता था। ओरछा के राजा जुझार सिंह एवं उनके भ्राता पहाड़ सिंह आदि बुन्देला प्रायः आगरा में ही रहते थे। मुगल दरबार के विश्वस्त मनसबदारों में थे। बादशाह द्वारा उन्हें ओरछा राज्य की जागीर दी गई थी। मुगल बादशाह एवं उनके सुबेदारों के अत्याचारों से दीवान हरदोल क्षुब्ध रहते थे।

दीवान लाला हरदौल का विवाह दुर्गापुर (दतिया) के दीवान लाखन सिंह परमार की बेटी हिमाचल कुंवरि से वि.सं. 1685 में हुआ। लाला हरदौल प्रजावत्सल थे, हिन्दु-मुस्लिम समस्त प्रजा को समान न्याय-पोषण देते थे। प्रजा भी अपने दीवान को बहुत चाहती थी। एक दिन वन में शेर ने उन पर हमला कर दिया, तब, अकेले ही लाला ने उस हिंसक शेर का वध कर डाला था। दीवान हरदौल जू ने हिन्दुओं को धर्म के प्रति जागरूक किया। वीर सिंह देव के समय से ही ओरछा एक समृद्ध राज्य था। बुन्देली संस्कृति एवं कला का स्वरूप निखरा हुआ था। दीवान हरदोल के नेतृत्व में ओरछा निर्भय था, किसी भी मुगल सुबेदार की हिम्मत नहीं थी कि ओरछा के स्वाभिमान एवं सम्मान पर चक्षु प्रहार कर सके। ग्वालियर के मुगल सुबेदार शहबाज खाँ, कुतब खाँ ने ओरछा में घुसने की हिमाकत की तो लाला ने वि.सं. 1684 में द्वन्द्व युद्ध में दोनों को मार डाला। जिनकी कब्र ओरछा के फूलबाग के उत्तर में बनी हुई हैं।

इस घटना से बादशाह शाहजहाँ की भौंहें तन गई, उसने मुगल दरबार के पहलवान मेंहदी हुसैन को ओरछा भेजा कि कुश्ती के दौरान हरदौल की हत्या कर दे। हरदौल ने मेंहदी की ललकार पर कुश्ती लड़ी किन्तु उसके घातक प्रहार से उसकी मंशा, भाँप गये और पटक कर मार डाला।

बादशाह शाहजहाँ ने ओरछा के राजा जुझार सिंह, पहाड़ सिंह आदि बुन्देलों को बुलाकर कान भरे कि हरदौल मुगल राज्य का शत्रु है, ओरछा पर भी वह कब्जा कर लेगा इसी दौरान मुगल सेनापतियों को ओरछा पर आक्रमण करने का फर्मान जारी कर दिया। वि.सं. 1687, विशाल मुगल सेना ने देतवा तक घेरा डाल लिया। मुगल सेनापति खान जहान रूहेला और फिदायी खाँ ससैन्य ओरछा को

रौंदने आ गये। दीवान हरदौल लाला ने पहले से ही तैयारी कर रखी थी। ओरछा राज्य एवं जागीरदारों की चालीस हजार सेना ने मुगलों को खदेड़ दिया। इस अपमान से बादशाह क्षुब्ध हो गया। जागीर का लालच देकर पहाड़ सिंह को अपनी तरफ मिला लिया और उसकी पत्नी द्वारा जहरयुक्त भोजन लाला हरदौल को खिला दिया जिससे क्वार शुक्ल दशमी रविवार वि.सं. 1688 में 24 वर्ष की उम्र में उनका देहान्त हो गया। ओरछा का जनमानस अपने प्रिय दीवान लाला हरदौल के निधन से विह्वल/दुःखी हो उठा था। सभी के मन में राजा जुझार सिंह, पहाड़ सिंह एवं हीरा देवी के प्रति घृणा भर दी थी। राजा जुझार सिंह मुगलों के षड़यंत्र का शिकार हुए थे।

शोक सागर में डूबे बुन्देलखण्ड में घोर निराशा छा गई कि अब हमारे मान सम्मान की कौन रक्षा करेगा। मुगलों के अत्याचार और ज्यादा बढ जायेंगे। राजा जुझार सिंह, पहाड़ सिंह आदि तो मुगलों के चाकर हैं। लाला हरदौल के जाने से ओरछा का मान बिन्दु चला गया, राजश्री नष्ट हो गयी।

दीवान हरदौल लाला की बहन कुंजावती का विवाह ओरछा के जागीरदार रणजीत सिंह परमार से हुआ था, उनकी बेटी का विवाह होना थाः जब वह ओरछा भात न्यौतने आई तो अपने प्रिय भाई दीवान हरदौल के देहान्त का समाचार सुन कर रो पड़ी और जुझार सिंह की लानत-पलानत करती हुई कहा- कि हमारा प्रिय भाई चला गया अब तो मुगलों के चापलूस चाकर बचे हैं, जिनका विनाश मुगलों द्वारा होगा।

सिद्ध पुरुष लाला हरदौल :- कुंजावती की बेटी रतन कुमारी का विवाह, मानसिंह बुन्देला (बड़ा गाँव के जागीर खड़उवा गाँव) के साथ होना था, बारात जब कुंजावती के द्वार पर आ गयी तो भानेज-दामाद ने जिद की कि जब तक मामा हरदौल जू भात नहीं परोसेंगे तब तक मैं भोजन नहीं करूंगा। जनातियों ने तर्क दिया की उनका देहान्त हो चुका है। भानेज दामाद की जिद थी, वह दृढ़ता से अपनी बात पर ड़टा रहा। अब बहन कुंजावती रो उठी और प्रिय भाई हरदौल का आह्वान किया।

उस समय आश्चर्य से सबकी आँखें फटी रह गई, जब सिर्फ एक हाथ दिखाई दे रहा था जो चमचा से सबको भात परोस रहा था। दीवान हरदौल के जयकारे से दिशाएँ गूंज उठी थी। हरदौल लाला सिद्ध पुरुष हो चुके थे, सम्पूर्ण बुन्देलखण्ड के गाँवों में उनके चबूतरे बने हैं।

विजय दशमी को उनकी पुण्य तिथि पर ग्रामवासी उनका स्मरण करते और उनके थान/चबूतरों/में भोग प्रसादी चढ़ाते हैं। दीपावली के समय लोक नृत्य दीवारी भी होती है। किवदंतियाँ हैं कि श्वेत अश्व में सवार लाला हरदौल की सवारी भी निकलती है। हरदौल चबूतरों में, फरियाद अर्जी दी जाती है। लोगों की मन्नतें पूरी होती हैं, ऐसे अनेक जागृत स्थान हैं जहाँ सेवादारों में हरदौल की आत्मा प्रविष्ट होकर फरियाद सुनती और कष्ट निवारण करती है।

जिन्दगी से अन्त में उतना ही पाते हैं जितना कि हम उसमें पूंजी लगाते हैं। यही पूंजी लगाना जिन्दगी के संकटों का सामना करना है, उसके उस पन्ने को उलटकर पढना है जिसके सभी अक्षर फूलों से ही नहीं, कुछ अंगारों से भी लिखे हैं। जिन्दगी का भेद कुछ उसे ही मालूम है जो यह जानकर चलता है कि जिन्दगी कहीं भी खत्म होने वाली चीज नहीं।

- रामधारी सिंह दिनकर

परमार वंश के राष्ट्रीय महापुरुष भर्तृहरि एवं विक्रमादित्य

– स्वामी गोपाल आनन्द बाबा

इतिहास पर दृष्टिपात करने से ज्ञात होता है कि अति प्राचीन समय में मालवा भारत के उत्तर-पश्चिम में पंचनद अन्तर्गत एक स्वतंत्र राज्य था। परन्तु बाद में अवन्तिका या अवन्ति व उज्जयिनी या उज्जैन का क्षेत्र मालवों का केन्द्र बना और यही क्षेत्र मालवा नाम से जाना गया। इसकी राजधानी उज्जयिनी, धारा नगरी (धार) दोनों रही। बाद में मांडवगढ़ (मांडू) भी राजधानी बनी। माहिष्मती (मांधाता क्षेत्र) से लेकर दक्षिण-मालवा व अमरावती तक यह राज्य फैला था। आज वह पूर्वी राजस्थान, उत्तर-पश्चिमी विदर्भ, दोआब या द्वारा प्रदेश या खान देश (नासिक आदि), उत्तर-पूर्व गुजरात एवं पश्चिमी मध्यप्रदेश के अन्तर्गत बँट गया है। यानी अवन्ति-उज्जैन, धार, आगर, मान्डू, रतलाम, भिलाषा, माहिष्मती, निमाड़, मालवा आदि।

बैताल पच्चीसी, सिंहासन बत्तीसी, भरथरी चरित्र आदि से ज्ञात होता है कि धारा नगरी पर क्रमशः इन्द्रसेन, चन्द्रसेन या धर्मसेन, गन्धर्वसेन या गर्दमिल्ल, शंख, भर्तृहरि का शासन रहा। शंख, भर्तृहरि व विक्रमादित्य तीनों भाई व गन्धर्वसेन के पुत्र थे। भर्तृहरि के अनुज विक्रमादित्य ने उज्जयिनी को राजधानी बनाई।

पुरानी उज्जयिनी नगरी वर्तमान नगर से एक किलोमीटर हटकर है। एक गृह यहाँ राजा भर्तृहरि की समाधि विख्यात है। वह किसी पुराने प्रासाद (हवेली) का एक टुकड़ा ज्ञात होता है, जो मिट्टी के नीचे दब गया हो।

विक्रमादित्य के अग्रज भर्तृहरि (योगी भरथरी) विक्रम संवत् से 50 वर्ष पूर्व से 22 विक्रमी तक लगभग 72 वर्ष रहे। कुछ लोग ईस्वी सन् से 56 वर्ष पूर्व का काल भर्तृहरि का मानते हैं। इन्होंने द्वितीय सुप्रसिद्ध शंकराचार्य- (44 ई.पू.)-79 ई.पू. से 35 ई.पू.-से शिष्यत्व ग्रहण की थी।

जामे जहाँनुमा भाग 2 पृष्ठ 4 तथा भाग 3 पृष्ठ 82, 83 सन् 1861 ई. लाहौर में लिखा है- ''विक्रमादित्य सन् ई. 56 वर्ष पूर्व पुरा यानी पंवार वंश में उज्जैन के राज्यासन पर बैठा था। चूंकि शंकराचार्य शिव के अवतार एवं शैव मत के प्रवर्तक विख्यात विषय हुए इसलिए उनके समय से राजानुजाचार्य के समय तक साधारणतः (अमूमन) शैव मत का बोलबाला रहा और जो राजा हुए वे भी शैव मत के हुए। महाराजा विक्रम एवं उनके बड़े भाई भर्तृहरि भी इसी मत के अनुयायी थे, वरन् यह विख्यात विषय है कि शंकराचार्य के किसी शिष्य से भर्तृहरि ने उपदेश लिया तथा सन्यासी हो गए।''

भर्तृहरि एवं गोपीचन्द को शैव मत के नाथ सम्प्रदाय का माना जाता है, जो कि मच्छेन्द्रनाथ (मत्स्येन्द्रनाथ) के शिष्य गोरखनाथ (गोरक्षनाथ) के मत को मानने वाले हुए। इन्होंने बौद्ध मत को अति हानिकारक धक्का लगाया। इससे जैसे कि शंकराचार्य को शिव का अवतार माना गया, उसी प्रकार भर्तृहरि को भी शिव का अवतार मान लिया गया। भर्तृहरि के शतक से भी कुछ-कुछ यह वार्ता झलकती है। भर्तृहरि ने विख्यात नीतिशतक, शृंगार, शतक, वैराग्य शतक की रचना की।

भर्तृहरि गुफा उज्जैन में एक गिरिनार पर्वत पर अब भी विद्यमान है। इलाहाबाद (इलावर्त्त या इलापुरी) के समीप मिर्जापुर के चुनार दुर्ग में भर्तृहरि की समाधि की व्यवस्था तथा पूजन-अर्चन हेतु मुगल औरगंजेब ने सन् 1862 ई. में अनुदान दिया था, जिसका फरमान आज भी वहाँ के महन्त जी के पास सुरक्षित है। राजस्थान के अलवर-जयपुर मार्ग में तिजारा तहसील अन्तर्गत प्रसिद्ध भर्तृहरि की समाधि व क्षेत्र है, जहाँ वे लोकदेव के रूप में पूजित हैं। भाद्रपद शुक्ल 7-8 को उनका प्रसिद्ध लखी मेला वहाँ लगता है।

हरिद्वार के प्रसिद्ध ब्रह्मकुण्ड पर विक्रमादित्य के भाई

भर्तृहरि ने तपस्या करके अमरत्व पद पाया था। अत: भर्तृहरि की स्मृति में सम्राट विक्रमादित्य ने पहले-पहल इस कुण्ड को सुन्दर ढंग से बनवाया तथा पैड़ियाँ (सीढ़ियाँ) बनवाई थीं। इसका नाम हर की पैड़ी इसीलिए पड़ा। यह सर्वविदित है।

सन् 493 ई.पू. में उज्जैन पर शासन करने वाले श्री हर्ष विक्रमादित्य के गुरु भाई थे भर्तृ प्रपंच। इन्हें भी बहुधा भरथरी कहा गया है पर ये भर्तृहरि नहीं थे, और न ही वे प्रसिद्ध योगी हुए। ये ब्राह्मण थे, जबकि योगी भरथरी राजर्षि सर्वमान्य हैं। भर्तृ प्रपंच के पिता स्वामी भगवत्पादाचार्य, आद्य शंकराचार्य के गुरु थे। ध्वस्त ओंकारेश्वर मंदिर को इन्हीं के अन्त समय में ओंकार उच्चारण कर समाधि लेने के कारण, श्री हर्ष विक्रमादित्य ने अपने पिता तुल्य गुरु की स्मृति में भव्य औंकारेश्वर मन्दिर बनवाया, जो अब तक विद्यमान है। योगी भर्तृहरि की जो कथा जन-जन में व्याप्त है, उसी अनुरूप उनका बनाया नीतिशतक, श्रृंगार शतक एवं वैराग्य शतक भी है। अत: यही वास्तविक विक्रम का अग्रज भर्तृहरि हैं।

तीसरे बुद्ध के अनुयायी बौद्ध भर्तृहरि सन् 650 ई. में मृत्यु को प्राप्त हुए। इन्हें सम्राट हर्षवर्द्धन वैस (सन् 602 ई. से 647 ई.) का दरबारी कवि माना जाता है। अत: ये भी वास्तविक भरथरी नहीं हैं।

सम्राट विक्रमादित्य परमार एवं विक्रमी संवत् की ऐतिहासिकता को अखिल भारतीय क्षत्रिय धर्म संरक्षण, शोध एवं समन्वय संस्थान के वरिष्ठ राष्ट्रीय उपाध्यक्ष डॉ. श्रीकृष्ण सिंह सोंढ़ ने सप्रमाण अपने शोध पत्र के द्वारा सिद्ध किया है जो कि भारत के विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित हो चुके हैं। ये तथ्य राँची एक्सप्रेस में भी 9-8-93 एवं 15-1-94 को छप चुके हैं। ये प्रमाण राजपूत मर्यादा में चार अंकों में, चेतक में एक अंक में, कल्याण के एक अंक में मेरे द्वारा प्रकाशित कराए गए हैं। सन् 1881 ई. के लंदन में हुए नवें ऐतिहासिक कांग्रेस में ही पं. ज्वाला सहाय, एम.ए. लुधियाना निवासी ने अपने शोध पत्र द्वारा सप्रमाण विक्रम एवं उनके संवत् की ऐतिहासिकता को सिद्ध कर सभी विदेशी इतिहासकारों का मुँह बन्द कर दिया था और तत्कालीन सेक्रेटरी ने यह कहा था कि भारतवर्ष के इतिहास व तिथियों को जो विदेशी विद्वानों द्वारा स्थिर किए गए हैं, पुन: लिखने की आवश्यकता है। 'भारतीय इतिहास पुनर्लेखन संस्थान' के निदेशक प्रसिद्ध इतिहासकार प्रो. पी.एन. ओक एवं उज्जैन के प्रसिद्ध विद्वान पं. सूर्यनारायण व्यास ने भी अनेकों प्रमाणों से इसे सिद्ध किया है।

जो लोग नवीं शताब्दी (ई.) से पूर्व का विक्रमी संवत् का कोई शिलालेख मिलना नहीं जानते व मानते हैं। (कर्नल जेम्स टॉड व उनके अनुयायी सोमनाथ से प्राप्त एक शिलालेख संवत् 1320 विक्रम के पूर्व में उत्कीर्ण किसी शिलालेख के स्वीकारना ही नहीं चाहते। उसी प्रकार अन्य देशी-विदेशी इतिहासज्ञ कहते हैं- ''ऐतिहासिक प्रमाणों में विक्रम सम्वत् का आरम्भ नवीं शताब्दी के पहले नहीं मिलता। पहला उल्लेख चाहमान राजा चण्ड महासेन का है जो धौलपुर में मिला है तथा विक्रम संवत् 898 का हवाला देता है।'' कुछ के कल्पनानुसार विक्रम संवत् के प्रचलन का काल छठी शती ई. है। श्री रोमेशचन्द्र दत्त विक्रमी संवत का प्रारम्भ सन् 544 ई. में मानते हैं।) उन्हें निम्न का अवलोकन करना चाहिए- 1. गुजरात के कई स्थानों से शिलालेख प्राप्त हुए हैं जो कि छावनी राजकोट के विचित्रालय एवं सरकारी पुस्तकालय में रखे हैं- सुदर्शन तालाब वाला सं. 72 वि., गोंदा ग्राम वाला सं. 103 वि., जसरन की धारवाला सं. 127 ई. मुख्य द्वारिका के पुस्तकालय के समीप वाला सं. 132 वि., बाकोड़ी ग्राम वाला सं. 261 वि., 2. सर विलियम जोन्स (वर्क्स-भाग 6, छापा लंदन, 1807, पृष्ठ 350)-दिल्ली के लाट पर लिखा संस्कृत श्लोक उद्धरण में वैशाख सुदि 5, सं. 123 वि., 3. राजस्थान के मंदसौर, (प्राचीन दशपुर) वाला मालव वि.संवत् 525 वाला शिलालेख, 4. सम्राट हर्षवर्द्धन का सं. 665 वि. वाला बाँसखेड़ा (शाहजहाँपुर)

का ताम्रपत्र लेख, 5. सुमात्रा के पालेम और हिंदचीन के संवोर नामक स्थानों पर हिन्दी राजा की विजय के शिलालेख हैं, उन पर भी उनकी तिथि एक संवत् 605 विक्रमी दी गई है, 6. राजस्थान के शेरगढ़ (प्राचीन कोषवर्धन) वाला सं. 849 वि. वाला संस्कृत की बीस श्लोकों वाली प्रशस्ति लेख।

विक्रमादित्य संबंधी अन्य प्रमाणों के लिए इतिहासज्ञ निम्न पर ध्यान दें- 1. जैनी रङ्ग विजय-गुर्जर देश भूपावली, 2. श्रीदेवकृत विक्रम चरित, 3. प्रभावक चरित्र (4.90), 4. अरबी कवि निर्रहर विनतोई से अरुल ओकुल-अरबी काव्य संग्रह ग्रंथ-पृष्ठ 3, 5, 5. प्रो. ग्रिफिथ-भूमिका रामायण, 6. लेथवृज-हिन्द का इतिहास-पृष्ठ 41, 7. मार्शश्मिनी-युधिष्ठिरी-पृष्ठ 20, 8. डब्ल्यू हण्टर-लेख-पृष्ठ 137, 9. इन्फिन्टन-तारीख हिन्दुस्तान-बाब 3-पृष्ठ 277, 10. कर्नल जेम्स टॉड-इतिहास तिमिर नाशक-तीसरा खण्ड-पृष्ठ 5-बाब अव्वल, 11. तारीख फरिश्ता-पृष्ठ 4 मुकाले अव्वल, 12. तारीख आलम-पृष्ठ 1-हिस्सा अव्वल, 13. उड़ीसा के नन्दपुर से प्राप्त सिंहासन बत्तीसी, 14. कालिदास रचित-ज्योतिर्विदाभरण-अध्याय 22, श्लोक 18, श्लोक 21 व अन्य श्लोक-मुद्रित काशी, 15. सैरुल्मुल्कद्दमीन व चेहलजवाच-ऐतिहासिक पृष्ठ 93 में प्रकाशित विक्रमादित्य का रोम नरेश अगस्टस को लिखा मैत्री पत्र एवं इतिहासज्ञ-डीएनुवल की स्वीकृति, रोमन राजा अगस्टस के यहाँ विक्रमादित्य के दूत का विद्यमान रहना (सन् 27 ई.), मैसूर में रोमन अगस्टस का सिक्का प्राप्त होना, 16. प्राचीनकाल से पाए जाने वाले भारतीय ज्योतिष व ग्रंथों में दिए गए तिथिपत्र, 17. जैन ग्रंथ, 18. प्रो. ह्वटनी के मन्तव्य, 19. प्रो. पैटसेन, डॉ. बोलर, डॉ. किलहाने की इस संबंध में सहमति, 20. भविष्य पुराण के 21-17/18 एवं अन्य श्लोक, 21. अरब के कवि 'नोमान-बिन-आदि' की विक्रमादित्य की प्रशस्ति में कविता, जो कुस्तुन्तुनिया के सुन्तानिया पुस्तकालय में चमड़े पर लिखी अब तक मौजूद है, 22. गुणाढ्य कृत बृहत्कथा (पैचासी या पैशाची भाषा में है) पर आधारित पंडित सोमदेव भट्ट रचित कथा सरित सागर (रचनाकाल 1063 ई. से 1082 ई. के मध्य की मान्यता), 23. बोधगया विहार का शिलालेख, जिस पर विक्रमादित्य को 'संसर्ग प्रसिद्ध राजा' उत्कीर्ण किया गया है, 24. महरोली (दिल्ली) का लौहस्तम्भ एवं वेधशाला (कुतुबमीनार) का जो अब शोधपत्र-प्रमाणित इतिहास प्रकट हुआ है, 25. काशी-विश्वनाथ मंदिर, जनपद गोंडा में देवीपाटन मंदिर, अयोध्या में श्रीरामजन्म भूमि मंदिर, उज्जैन का महाकाल मंदिर व हरसिद्धि मंदिर, हरिद्वार का हर की पैड़ी, मक्केश्वर महादेव मंदिर, काला का विष्णु मंदिर, काला राजपूत आदि के निर्माण-नवनिर्माण-जीर्णोद्धार आदि के शोधपरक इतिहास, 26. बैताला पच्चीसी, सिंहासन बत्तीसी, भरथरी चरित्र, 27. पुरानी उज्जैनी स्थित भग्न भर्तृहरि की समाधि गृह, भर्तृहरि की हर की पैड़ी, उज्जैन की भर्तृहरि-गुफा, गिरिनार पर्वत स्थित भर्तृहरि-गुफा, चुनार दुर्ग (मिर्जापुर) में स्थित भर्तृहरि की समाधि, राजस्थान के अलवर-जयपुर मार्ग में तिजारा तहसील अन्तर्गत प्रसिद्ध भर्तृहरि की समाधि का क्षेत्र-जहाँ वे लोकदेव के रूप में पूजित हैं-भाद्र पद शुक्ल 7-8 को उनका प्रसिद्ध लखी मेला लगता है, उनके द्वारा रचित नीति शतक, श्रृंगारशतक, वैराग्य शतक एवं व्याकरण शास्त्र को दर्शन शास्त्र में स्थापित करने वाला उनका 'वाक्यप्रदीप' ग्रंथ तथा इस पर लिखी प्रख्यात वैयाकरण कश्मीर के हेलाराज की टीका आदि का प्रमाणिक इतिहास तथा भर्तृहरि का विक्रम संवत् से 50 वर्ष पूर्व से 22 विक्रमी तक विद्यमान रहने का तथा द्वितीय सुप्रसिद्ध शंकराचार्य (44 ई.पू.) से शिष्यत्व ग्रहण करने का एवं गुरु गोरखनाथ का शिष्य होकर नाथ सम्प्रदाय की गद्दी पर बैठने व अपने भगना गोपीचन्द गौड़ को शिष्य बनाने आदि का इतिहास, 28. जामे जहाँनुमा भाग दो-पृष्ठ 4 तथा भाग तीन पृष्ठ 82-83 सन् 1861 ई. लाहौर, 29. तारीख हिन्दुस्तान-पृष्ठ 72-सन् 66 ई., 30. विक्रमादित्य के विजय जुलूस

में शामिल राजागण-दक्षिणापथ के, सौराष्ट्र, मध्य देश, बंग, अंग, गौड़, कर्नाट, लाट, कश्मीर, सिंध, भीलराज विंध्यबल, पारसी राजा निर्मूक, कलिंगनरेश कलिंगसेन का इतिहास, 31. विक्रम प्रशस्ति में उत्कीर्ण प्राप्त शिलालेख, 32. समुद्र पार मलयद्वीप की राजकुमारी एवं सिंहल (श्रीलंका) की राजकुमारी मदनलेखा से विक्रम के विवाह का इतिहास, 33. विक्रमादित्य की प्राप्त मुद्रा जिस पर एक और ''मालवगणस्य जय:'' एवं दूसरी ओर ''सूर्य'' अंकित है, 34. जैन ग्रंथों में विक्रमादित्य के पिता को गर्दमिल्ल व गन्धर्वसेन लिखना, 35. अन्य सनातनी श्रोत के उज्जैन के मालव गण नामक महेन्द्रादित्य (गर्दमिल्ल-गन्धर्वसेन) और मलयवती (सरस्वती-कालकाचार्य की बहन) को शिव आराधना से विक्रमादित्य की प्राप्ति का इतिहास, 36. द्वादश ज्योतिर्लिङ्गों का पुनरुद्धार कराना, महाकालेश्वर (उज्जैन) व सोमनाथ (सौराष्ट्र-काठियावाड़) का पुनर्निमाण कराना एवं प्रभासक्षेत्र के प्रभासपाटन में और ऊर्जा की विशाल प्रयोगशाला ''लोलार्क आश्रम'' की पुन: स्थापना कराने के इतिहास, 37. हिदुकुश के समीप प्रथम शक्तिपीठ 'हिंगुलाक्षमाता' एवं कामरूप में 'कामक्ष्योदेवी' की (मंदिरों की) पुनर्स्थापना का इतिहास एवं दोनों पीढ़ी को जोड़ने का सड़क मार्ग निर्माण का इतिहास, 39. मुम्बई से 13 कि.मी. पूर्व सागर के मध्य स्थित टापू-जिसमें 'एलिफैण्टा' गुफा स्थित है-की चोटी पर रखी विशाल तोप, जिसके अन्दर लेटकर मोटा आदमी भी आर-पार जा सकता है, जिसकी मार 20 योजत (एक योजन= 14 कि.मी.) तक है और जिसमें आज तक जंग नहीं लग सका है (जैसा कि विक्रमादित्य द्वारा निर्मित दिल्ली का लाट जिसे शिवालिक पर्वत में उन्होंने स्थापित कराया था जो कि बाद में दिल्ली में लाकर स्थापित किया गया)- इसके विक्रमादित्य द्वारा निर्माण कराए जाने का इतिहास।

उपरोक्त सारे तथ्य चीख-चीख कर विक्रमादित्य की ऐतिहासिकता उनका कालखण्ड, उनके द्वारा विक्रम संवत् का शुभारम्भ, उन्हें भर्तृहरि का अनुज, शालिवाहन का पितामह, कालिदास, शंकु एवं वराह का मित्र, परमार वंशीय क्षत्रिय, सूर्यवंशी प्रमाणित करते हैं। उनका 80 वर्ष से अधिक एवं उनके पौत्र शालिवाहन का 60 वर्ष का शासन प्रामाणिक सिद्ध होता है। जहाँ विक्रमादित्य ने चन्द्रमास गणना अनुसार वि.सं. चलाया, वहीं शालिवाहन ने भी शकों को उत्तर-पश्चिम की ओर खदेड़कर, पैतृक राज्य प्राप्त कर सौर-मास-गणना अनुसार शालिवाहन शके (शकाब्द या शक संवत्) चलाया। दोनें ही संवत् अपने प्रारम्भ से ही पूरे भारतवर्ष में प्रचलित रहे तथा भारतीय पंचाङ्गों में व्यवहृत हुए, परन्तु जहाँ वि.सं. का अधिक जोर उत्तर में रहा वहीं शा.श. का अधिक जोर दक्षिण भारत में रहा और यही बात सिद्ध करती है कि उत्तर-पश्चिम भारत सहित अफगानिस्तान, बैक्ट्रिया, भारकन्द, ताशकन्द, खोतान के शासक भूची कुषाण कनिष्क (तातारी शक) द्वारा चलाया गया शक संवत् दक्षिण भारत में कदापि मान्य नहीं हो सकता, उसे तो उसी के शासन क्षेत्र में ही अधिक मान्यता मिलनी चाहिए थी।

विक्रम संवत् व मालव संवत् व मालव विक्रम संवत् नि:संदेह उज्जैनाधीश मालव गणनायक, परमार (पंवार) क्षत्रिय कुलोत्पन्त विक्रमादित्य नामधारी (पदवीधारी नहीं) चक्रवर्ती सम्राट (अरबीस्तान से ब्रह्मदेश एवं हिमालय से हिन्दू महासागर तक का विजेता-धार्मिक, सांस्कृतिक, राजनीतिक) ने शकों को भारी पराजय देकर अपनी पैतृक राज्य को प्राप्त कर, 23 फरवरी 57 ई.पू. के दिन, प्रजा को सब प्रकार के ऋण से मुक्त कर एवं धर्मसंसद की आज्ञा व सब विधि-विधान को पूरा कर, राज्यारोहण (सिंहासनारूढ़) के समय से ही प्रचलित व प्रारम्भ किया था जिसे विक्रमी संवत् एवं विक्रमादित्य संवत् भी कहते हैं।

अत: हमारी सरकार को एवं भारतीय इतिहासकारों को विदेशी दासत्व मानसिकता को उतार फेंकना चाहिए एवं सत्य को गले लगाकर भारतीय स्वाभिमान को उतिष्ठत-जाग्रत करने में दायित्वपूर्ण भूमिका निभानी चाहिए।

●

आओ! कुछ चिन्तन करें

– भंवरसिंह मांडासी

आज सामाजिक परिवेश तेजी के साथ बदल रहा है। हमें अपने पारम्परिक संस्कारों में कुछ ऐसा लग रहा है जो बेजरूरत, अप्रासांगिक एवं युगानुकूल नहीं है इसलिए हम नए को अपनाने के लिए न केवल लालायित हैं अपितु बेसब्र हैं। यह नया पन हमें और हमारी भावी संतति को कुछ दिशा दे सकता है, ऐसा अहसास युग की दौड़ में हमारे भीतर हीन भावना न भरकर हमें आज की सामाजिक धारा से जोड़ता है लेकिन सवाल इस बात का है कि हमें क्या पाना और क्या छोड़ना है। पाना कब सम्भव होगा, यह समय के भीतर ही छिपा है लेकिन जिसे हम छोड़ रहे हैं उस पर थोड़ा विचार आवश्यक है। कहीं ऐसा नहीं हो जाये कि सोने के बदले चाँदी लेना बुद्धिमता कही जाय। इस संक्रमणशील मानसिकता में जीने वाले समाज के लिए कुछ बिन्दु विचारणीय है जिनका लाभ व्यक्ति और समाज को मिल सकता है –

1. शास्त्र सम्मत वैवाहिक सम्बन्ध :

शिक्षा, आधुनिकता और पाश्चात्य प्रभाव के कारण वैवाहिक सम्बन्धों में धीरे-धीरे घालमेल की स्थिति उत्पन्न हो रही है। आज ये सम्बन्ध लड़कें-लड़की की पसन्द पर आधारित हो रहे हैं। माता-पिता कई स्थितियों में मौन एवं असहाय नजर आते हैं और कहते हैं क्या करें, लड़के ने जाति, गौत्र और रक्त को ध्यान में रखे बिना शादी कर ली, अब कुछ नहीं हो सकता। अधिक कुछ कहेंगे तो लड़के और उसकी बहू हमारे से दूर चले जायेंगे क्योंकि आज सब स्वतंत्र हैं। माता-पिता के नियंत्रण में कोई रहना नहीं चाहते। सवाल इस बात का है कि बिना सोचे-समझे किए गए ऐसे वैवाहिक संबंध लम्बे समय बाद सुखकर प्रतीत नहीं होते फिर उनकी संतान किस तरह के सम्बन्धों को अपनायेगी, यह कहा नहीं जा सकता क्योंकि धर्मशास्त्र या जाति सिद्वान्त उनके लिए महत्त्वपूर्ण नहीं है। इसे वे रूढ़िवादिता कहेंगें। मनु स्मृति में लिखा है :-

''असपिण्डा च या मातुर सगोत्रा च पितुः।
सा प्रशस्ता हिजातीनां दार कर्मणि मैथुने।।''

अर्थात् कन्या माता के कुल की छः पीढ़ियों में न हो और पिता के गोत्र की भी न हो, उससे विवाह करना शास्त्र सम्मत है। इसी प्रकार याज्ञवल्क्य स्मृति में यह कहा गया है कि जो भिन्न ऋषि गौत्र का हो, माता की ओर से पाँच पीढ़ी तक और पिता की ओर से सात पीढ़ी तक उसका सम्बन्ध न हो, उसी से विवाह करना शास्त्र सम्मत है। इस शास्त्र सम्मत विवाह के लिए हमें गोत्र प्रवर ऋषि, गौत्र और अपने से सात पीढ़ियों का ज्ञान होना जरूरी है तभी हम शास्त्र विधि का पालन कर सकते हैं।

क्षत्रियों में शास्त्र विधि से सम्मत विवाह को स्वीकारा गया है क्योंकि वे कुलीनता की दृष्टि से उत्तम माने जाते हैं। हिन्दुओं में क्षत्रिय ही एक ऐसी जाति है जिनके सम्बन्ध गोत्रान्तर या बहिगोत्र (अर्थात् अपने गोत्र से दूसरे गोत्र में, उदाहरण के लिए शेखावतों के राठौड़ों आदि) में होते हैं जबकि दूसरी जातियों के सगोत्री या निकटतम रक्त से होते हैं। क्षत्रियों में अपने रक्त ग्रुप में विवाह की प्रथा नहीं है। अतः बहिगोत्र में विवाह करने से दो कुलों का समावेश हो जाता है और अच्छे आचरण वाली संतान पैदा होती है। इस व्यवस्था के लिए गोत्र-प्रवर निर्णय होता है अर्थात् क्षत्रियों के लिए चारों संस्कार यथा नामकरण, यज्ञोपवीत, विवाह और पिण्डदान के समय आवश्यक रूप से गोत्र को ध्यान में रखकर ही संस्कार सम्पन्न करवाए जाते हैं।

दूसरी बात यह है कि उत्तमता को बनाए रखने के लिए क्षत्रियों में नाता व्यवस्था अर्थात् दूसरी स्त्री को पत्नी

बनाकर रखने का कोई स्थान नहीं है। यह व्यवस्था केवल क्षत्रियों में ही पाई जाती है, अन्यों में नहीं। संस्कार, कुलीनता और उत्तमता की दृष्टि से यह विवाह-विधि शास्त्र सम्मत एवं वैज्ञानिक है। जब हम कुल की बात करते हैं तो कुल से तात्पर्य यही है। कुल और खानदान की केवल चर्चा करने से कुछ नहीं होता। आवश्यकता इस बात की है कि इस वैज्ञानिक आधार को हम अपनाएँ।

विवाह के बाद स्त्री की जाति या गोत्र नहीं बदलता :

जाति निर्धारण सिद्धांत की अज्ञानता, आधुनिकता और फैशन के चलन के कारण ऐसा भ्रम उत्पन्न हो गया है कि स्त्री का विवाह हो जाने से अपने पीहर पक्ष का कुल या वंश परिवर्तित हो जाता है फलतः आज ऐसा खूब हो रहा है। उदाहरण के लिए किसी शेखावत कन्या का विवाह जब राठौड़ कुल के लड़के के साथ होता है तो विवाह के उपरान्त वह भी राठौड़ लगाने लग जाती है अर्थात् पहले वह सज्जन शेखावत थी तो विवाह के बाद श्रीमती सज्जन राठौड़ लगाने लगती है। कई बार तो स्वयं पति भी इसे अज्ञानतावश उचित बतलाने लगता है लेकिन ऐसा गलत है। यह जाति सिद्धान्त है कि विवाह के बाद उसकी जाति या उसका गोत्र नहीं बदलता। आज के भौतिकवादी युग में शास्त्र ज्ञान को समझाने का कोई प्रयास नहीं करता फलतः इस गोत्र परिवर्तन से कई असंगतियाँ पैदा हो जाती हैं। हमारे संविधान में भी ऐसा प्रावधान है कि विवाह के पश्चात स्त्री या पुरुष की जाति को बदलना स्वीकार नहीं किया जाएगा। उच्चतम न्यायालय ने भी अपने निर्णय में इसे स्पष्ट कर दिया है।

अत: अपने बच्चों को इसकी जानकारी दें। हमारे परिवार की कन्या विवाह के बाद अपना गोत्र न बदले और हमारे परिवार में ब्याही स्त्रियाँ भी अपना गोत्र ही लगाएँ, हमारा नहीं।

(क्रमश:)

साभार : **राजपूत निर्देशिका**

पृष्ठ 12 का शेष

भरे हलाहल हैं ये विष के प्याले....

शीतलता प्रदान करने के मार्ग पर पूर्ण चेतना के साथ आगे बढ़ पा रहे हैं? यदि ऐसा नहीं कर रहे हैं तो क्या हम वास्तविक भक्ति को हमारे में आमंत्रित कर पा रहे हैं? इन प्रश्नों के उत्तर का आकलन हमारा व्यक्तिगत आकलन ही हो सकता है, किसी अन्य के पास इसका कोई उपयुक्त मापदंड उपलब्ध नहीं है, भक्ति के मार्ग में तो स्वयं के मापदंड स्वयं को ही तय करने पड़ते हैं, अपने आपको स्वयं ही पढ़ना पड़ता है और ईमानदारी से जब हम अपने आपको पढ़ते हैं तो पाते हैं कि अभी तक फफोले शांत नहीं हुए हैं, इस गगन में उदित किसी अन्य चंद्रमा से मैं शीतल प्रेम पा तो रहा हूँ लेकिन स्वयं को चंद्रमा कहने का साहस तो नहीं ही कर पा रहा हूँ और इसीलिए मेरी भक्ति की वास्तविकता भी उतने ही अंशों में फलीभूत हो पा रही है जितने अंशों में मेरा आचरण विचारानुकूल बन पा रहा है। ऐसे में केवल मेरा पुरुषार्थ अपने आचरण को पूज्य तनसिंह जी के उपरोक्त विचार के अनुकूल बनाने का होना चाहिए क्योंकि उनकी कृपा से मेरा उनके द्वारा प्रशस्त मार्ग के लिए चयन हुआ है। लेकिन इसके लिए मेरा पुरुषार्थ ही पर्याप्त नहीं है, बल्कि उसमें पूज्य तनसिंह जी की कृपा का योग होना आवश्यक है और इसीलिए उनसे ही प्रार्थना है कि जब उन्होंने मुझे अपना कृपा पात्र बनाकर उनके द्वारा प्रशस्त मार्ग पर बढ़ाया है तो उस कृपा को और बढ़ायें और मुझे मेरी भक्ति को वास्तविक बनाने की क्षमता प्रदान करें।

कृपाकांक्षी!

हर स्थिति में खुशी

– अजीतसिंह कुणघेर

खुशी कोई दुकान से नहीं मिलती, यदि खुशी दुकान से मिलती तो इस दुनिया में कोई दुःखी नहीं होता..लेकिन खुशी आपके अंदर है, उस अमूल्य खजाने को महसूस कीजिए।

एक सेठजी थे। उनके यहाँ एक युवान नौकरी करता था। बड़ी मेहनत और लगन से काम किया करता था। सेठजी और वह युवान परस्पर बड़े खुश थे। सब कुछ अच्छा चल रहा था। एक दिन उस युवान ने बिना बताए छुट्टी कर ली। सेठजी को अचरज हुआ और सोचने लगे कभी भी गैर हाजिर न रहने वाला, बिना पूछे एक भी घंटा दुकान से बाहर न जाने वाला युवान एकाएक गायब? अब तो सेठजी भी सोचने लगे, युवान मेहनती है, कहीं बीमार पड़ गया होगा, कहीं कोई आपत्ति आई होगी, कहीं पैसों की जरूरत पड़ी होगी। उन्होंने उस युवान की तनख्वाह बढ़ाने का सोच लिया। अगले दिन जैसे ही वह युवान दुकान पर आया तो सेठजी ने खुश होकर कहा देखो भैया आज से तुम्हारी तनख्वाह बढ़ा दी गई है। अगले महिने की पहली दिनांक को उस युवान को बढ़ी हुई तनख्वाह मिली। लेकिन उस युवान ने कोई प्रतिक्रिया नहीं दी। न सेठजी को धन्यवाद कहा और न खुशी व्यक्त की बस वह हर रोज की तरह लगन से काम करता रहा। सेठजी ने सोचा युवान कमाल का है न तो मुझे धन्यवाद देता है, न अपनी खुशी प्रकट करता है। कुछ महिनों के बाद वह युवान पुनः छुट्टी पर चला गया। उस दिन सेठजी को बड़ा गुस्सा भी आया। अजीब आदमी है, जिसकी मैंने तनख्वाह बढ़ाई फिर भी न मुझे धन्यवाद दिया और न मुझसे कुछ कहा और फिर से छुट्टी पर चला गया। दूसरे दिन जब वह युवान अपने काम पर हाजिर हुआ तो सेठजी ने कहा-देखो भैया तुम्हारी तनख्वाह घटा दी है और पहले जो मिलती थी वही मिलेगी।

अगले महिने की पहली तारीख आई, उस युवान को घटाई हुई तनख्वाह दी तो इस बार भी उस युवान ने कोई प्रतिक्रिया नहीं दी। न वो खुश हुआ, न दुखी हुआ। तब सेठजी ने उस युवान को अपने पास बुलाया और प्रेम से पूछा, सेठजी ने कहा- मुझे यह बताओ जब मैंने तुम्हारी तनख्वाह बढाई तब तुम खुश नहीं हुए और अब तुम्हारी तनख्वाह घटा दी तब तुम दुःखी नहीं हुए उसका राज क्या है? उस युवान ने कहा जब पहली बार नहीं आया तब सेठजी मेरे घर बच्चा पैदा हुआ था और आपने मेरी तनख्वाह बढाई थी। तब मुझे लगा ऊपर वाले ने मेरे बच्चे का हिस्सा दिया है। तो मैं ज्यादा खुश नहीं हुआ। जब मैं दूसरी बार नहीं आया था, तब मेरी माताजी का देहान्त हुआ था। तब आपने मेरी तनख्वाह घटा दी तब मुझे लगा कि मेरी माँ अपने हिस्से का साथ ले गई है। अब आप ही बताइए की मैं परेशान क्यों होऊँ? यह बात सुनकर सेठजी ने उसे गले लगा लिया और कहा-वाह तेरी समझदारी। आज से तुम मेरा नौकर नहीं आधा भागीदार होगा। तब उस युवान ने फिर से कहा देखा सेठजी जिसके नसीब में मेहनत का लिखा है उसे कोई ले नहीं पाता उसे वह मिलकर ही रहता है वही तुम आज मुझे दे रहे हो। उस समय भी उसके चेहरे पर न दुःख था न खुशी, बस शांत और मौन ही था।

लेकिन इस बार युवान नौकर नहीं सेठजी का भागीदार बन गया था। सेठजी भी न दुःखी थे न नाराज, अपितु उन्हें नाज था कि उन्होंने नौकर के स्वरूप में हीरा पाया था।

इसलिए सन्तों की वाणी में और शास्त्रों की हिदायत के भाव से कहें तो–

संसार में सरसो रहे मन मेरी पास
संसार में ले पाय नहीं जानु मेरो दास

पानी बीच मीन प्यासी, क्या हम पानी में रहने वाली मछली की तरह संसार में रह सकते हैं जैसे पानी में रहकर भी मछली प्यासी रहती है। संसार की मायाजाल में भी रहकर माया का आवरण हमें बन्धन में न ले सके । जैसे नरसि मेहता ने अपनी पत्नी के देहान्त के समय बड़ी सरलता से कह दिया था–

भलु थयुं भागी झंझाल सुखे भजीसुं श्रीगोपाल

इस कहानी में से हमें बोध मिलता है की जीवन सुख और दुःख से भरा है। अच्छा और बुरा वक्त तो हर किसी का आता है। लेकिन दोनों परिस्थिति में समान रह सकें। सिकंदर वही होता है जो हर वक्त को पार करके आगे बढ़ जाए, इसलिए संत लोग कहते हैं ज़िन्दगी के दबाव में आना बंद कीजिए बल्की हर पल और हर क्षण खुश रहिए।

आओ हम इसी संदेश को अपने जीवन में धारण कर आज की प्रभात को हमेशा की सुप्रभातम बनाएँ।

अपनी बात

साधारणतया हम उपदेश सुनते ही रहते हैं कि षट् विकारों को जीवन से बाहर निकालो। अतः क्रोध, काम आदि से लड़ने का मानस बना लिया जाता है और इनसे लड़ने का निश्चय कर भिड़ पड़ते हैं। इनको शत्रु माना है, बुराई माना है, इसीलिए इनसे लड़ने को सही रास्ता मानते आए हैं। पर थोड़ी समझ इनके बारे में जगाएँ तो लगता है शत्रुता इनमें नहीं है, इन पर रुक जाने पर ये शत्रुता का व्यवहार करते हैं। इन पर रुक जाना नासमझी है। इनको थोड़ा समझें तो क्रोध क्षमा तक पहुँच सकता है। काम ब्रह्मचर्य तक पहुँच सकता है। ये शुरुआत है बीज की, पर इन्हीं से हम लड़ेंगे तो पौधे (क्षमा, ब्रह्मचर्य आदि) कैसे पनपेंगे? हम क्रोध से लडेंगे तो क्रोध को दबा लेंगे और क्रोध के हाथों में हमेशा के लिए कैदी हो जाएंगे। क्रोध से कभी ऊपर नहीं उठ सकेंगे और अक्रोध भीतर नहीं आ सकेगा। अक्रोध क्रोध के विरोध में नहीं आता, अक्रोध आता है क्रोध को पहचानने से और परिवर्तित करने से।

एक बीज को माली बोता है, प्रेम करता है, पानी डालता है, रक्षा करता है, बाड़ लगाता है कि कोई जानवर न खा जाए। फिर धीरे-धीरे उसमें अंकुर आता है। पत्ते आते हैं, फिर फूल आते हैं, फल लगते हैं। जो बीज के साथ करना होता है, वही क्रोध, लोभ, काम, मोह के साथ करना होता है। ये सब बीज हैं। इनके भीतर बड़ी संभावनाएँ छिपी हैं। लेकिन इनसे लड़ना सही रास्ता होना चाहिए। अगर इन्हें पहचान लिया जाए तो इन्हें बदला जा सकता है और वही सच्ची राह है। जो अपने भीतर बीज रूप संभावनाएँ उपलबध हुई हैं उनको जो पहचानता है और परिवर्तित करता है, उसके जीवन में एक सकारात्मक परिवर्तन फलित होता है। एक दिन उसके भीतर अद्‌भुत चीजें प्रकट होनी शुरू हो जाती हैं। बहुत छिपा है मनुष्य के भीतर और जिनको हम बुराइययाँ कहते हैं उनमें भी बहुत कुछ छिपा है। शायद प्रकृति की तरकीब ऐसी है कि किसी कोमल चीज को छिपाने के लिए बहुत सख्त चीज की खोल पहना दी जाती है। बीज होता है भीतर, ऊपर सख्त खोल होती है। इस क्रोध की खोल के भीतर कहीं क्षमा छिपी है, लेकिन इस खोल को जब हम समझेंगे और प्रयास करेंगे तो वह क्षमा का पौधा भी इसमें से निकल सकता है।

यह भाव चारों ओर फैला हुआ है कि ये हमारे शत्रु हैं। पर यदि इनके खोल में बैठे बीज को पाकर बोएंगे तो ये हमारी शक्तियाँ हैं। ये हमारे जीवन की ऊर्जाएँ सिद्ध होंगी। इसलिए इनके दुश्मन बनने से तो गलती हो जाएगी। इनको समझना होगा, पहचानना होगा, इनसे मैत्री करनी होगी। इन्हें धीरे-धीरे राजी करना होगा कि ये ऊपर की ओर विकसित हों।

इच्छा और आज्ञा में क्या कोई फर्क है? जो आज्ञा देने का हक रखता है उसी इच्छा को आज्ञा नहीं मानना तकनीकी समझदारी है क्योंकि हमारी भाषा में आज्ञा और इच्छा के दो अर्थ होते हैं। जिसकी इच्छा का आज्ञा के समान सम्मान न होता हो उसे आज्ञा कभी देनी ही नहीं चाहिए क्योंकि ऐसी आज्ञा का पालन केवल एक दो बार ही होगा। जिसकी इच्छा का आज्ञा की भाँति सम्मान हो, उसे आज्ञा देने की आवश्यकता ही नहीं होगी।

– पू. तनसिंह जी

स्वच्छ भारत
एक कदम स्वच्छता की ओर
SS KIRTEE
AN ISO 9001 : 2015 CERTIFIED COMPANY
Piping is Our Business Satisfaction is Our Goal
17425
CML-8600120461
IS:12786
CML-8600120457
IS:4984
CML-8600120464
Mr. Surendra Singh Shekhawat
Director
Shree Ganesh Enterprises
Manufacture Of:-
SS KIRTEE BRAND ISI HDPE Sprinkler Pipe
Mini Sprinkler System | HDPE Pipes & Coils For Water
SHREE GANESH ENTERPRISES
Khasra No. 315/6, 317,318, RIICO Road, Prasrampura, SKS Industrial Area
Reengus, Sikar (Rajasthan)
8209398951 surendrasinghshekhawat234@gmail.com
GANESH
HOTEL
Ganesh Singh Maharoli
Datar Singh Maharoli
Opp. Polovictory Cinema. Station Raod, Jaipur | Contact No. 9929105156

जनवरी, सन् 2025

वर्ष : 62, अंक : 01

समाचार पत्र पंजी.संख्या R.N.7127/60

डाक पंजीयन संख्या - Jaipur City /411/2023-25

संघशक्ति

ए-8, तारानगर, झोटवाड़ा,
जयपुर-302012
दूरभाष : 0141-2466353

E-mail : sanghshakti@gmail.com
Website : www.shrikys.org

श्रीमान् ....

....

....

श्री संघशक्तिप्रकाशन प्रन्यास (स्वत्वाधिकारी) के लिए मुद्रक एवं प्रकाशक राजेन्द्र सिंह राठौड़ द्वारा भास्कर प्रिंटिंग प्रेस, डी बी कोर्प लिमिटेड, प्लोट नंबर-01, मंगलम कनक वाटिका के पीछे, प्रधानमंत्री ग्राम सड़क योजना, रेल्वे क्रोसिंग के पास, बिलवा, शिवदासपुरा, टोंक रोड़, जयपुर (राजस्थान)-303903 (दूरभाष -6658888) से मुद्रित एवं ए-8, तारानगर, झोटवाड़ा, जयपुर- 302012 (दूरभाष- 2466353) से प्रकाशित। संपादक राजेंद्र सिंह राठौड़। Email : sanghshakti@gmail-com | Website : www-shrikys-org